सैंटर फॉर डिस्टैंस एंड आनलाईन ऐजुकेशन विभाग

पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

कक्षा : बी.एड. भाग-1 *सैमेस्टर-2*

पत्र : XI और XII (हिन्दी शिक्षण) *एकांश संख्या : 2*

(Pedagogy of School Subject (Part-II)

माध्यम : हिन्दी

पाठ नं.

2.1 हिन्दी व्याकरण शिक्षण

2.2 दृश्य–श्रव्य साधन– अर्थ, महत्व, प्रकार, प्रयोग में सावधानियाँ

2.3 पाठ योजना

2.4 मूल्यांकन– अर्थ एवं परिभाषाएँ, उद्देश्य, महत्व, सोपान, अच्छे मूल्यांकन की विशेषताएँ

बी.एड. (प्रथम भाग) पेपर : XI और XII
(सैमेस्टर-दूसरा) हिन्दी शिक्षण
व्याकरण शिक्षण : महत्त्व, उद्देश्य, विधियां

पाठ नं• 2.1 सुधारिका : श्री सी. एल. नारंग

हिन्दी व्याकरण शिक्षण

2.1.1 उद्देश्य
2.1.2 भूमिका
2.1.3 व्याकरण की परिभाषा
2.1.4 भाषा शिक्षण में व्याकरण का महत्व
2.1.5 व्याकरण की शिक्षा के उद्देश्य
2.1.6 व्याकरण शिक्षा के सम्बन्ध में विभिन्न विचार
2.1.7 व्याकरण की शिक्षण प्रणालियां
2.1.8 व्याकरण शिक्षण की समस्त विधियों के प्रति संभावित दृष्टिकोण
2.1.9 व्याकरण की शिक्षा को रूचिकर बनाने के लिए सुझाव
2.1.10 सारांश
2.1.11 स्वयं जांच अभ्यास
2.1.12 अभ्यासात्मक प्रश्न
2.1.13 सहायक पुस्तकें

2.1.1 उद्देश्य

(i) व्याकरण को परिभाषित कर सकेंगे।
(ii) भाषा शिक्षण में व्याकरण के महत्व को बता पाएंगे।
(iii) व्याकरण की विभिन्न शिक्षण प्रणालियों में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे।
(iv) व्याकरण की शिक्षा को रूचिकर बना पाएंगे।

2.1.2 भूमिका

व्याकरण की शिक्षा के बिना भाषा की शिक्षा अधूरी रह जाती है। व्याकरण भाषा का सहचर है और व्याकरण की शिक्षा भाषा की शिक्षा का आवश्यक अंग है। व्याकरण के नियमों का पालन न करने से भाषा उच्छृंखल हो जाती है। दूसरे शब्दों में व्याकरण भाषा को संवारता है और उसे परिष्कृत करता है। पण्डित सीताराम चतुर्वेदी के शब्दों में , ''यदि भाषा को रथ और भाव को रथी मान लें तो व्याकरण को सारथी मान सकते हैं क्योंकि व्याकरण ही भाषा रूपी रथ को ठीक लीक पर इस प्रकार चलाता है कि इच्छित भाव सरलता से अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंच जाते हैं।'' इस प्रकार भाषा को शुद्ध बनाए रखने का काम व्याकरण का ही है।

2.1.3 व्याकरण की परिभाषा

व्याकरण शब्द वि+आ+कृ+धातु+ल्यूट् प्रत्यय के योग से बना है जिसका अर्थ है – 'व्याक्रिन्ते शब्दा येन' अर्थात् जिसके द्वारा अर्थ स्वरूप से शब्दों की सिद्धि होती है।

1. व्याकरण शब्दों के प्रयोग का अनुशासक है। इसीलिए पाणिनी मुनी ने इसको 'शब्दानुशासन' कहा है। व्याकरण का अध्ययन भाषा के शुद्ध प्रयोग के लिए किया जाता है।
2. महर्षि पतंजलि ने भी अपने महाभष्य में इसे 'शब्दानुशासन' कहा है।
3. स्वीट महोदय (Dr. Sweet) के मतानुसार, ''व्याकरण भाषा का व्यावहारिक विश्लेषण अथवा उसका शरीर विज्ञान है।''
("Grammar is the practical analysis of a languagge, its anatomy.")
4. हैज़लिट (Hazalitt) के शब्दों में, ''व्याकरण भाषा की विशेष प्रकार की रचना है।'' (Grammar is the description of the particular structure of a language.")
5. जैगर (Jaggar) ने 'प्रचलित भाषा सम्बन्धित नियमों की व्याख्या' को व्याकरण माना है।
6. लज्जाशंकर 'झा' ने भाषा का शुद्ध रूप पहचानने में छात्रों को सक्षम व समर्थ बनाना ही व्याकरण का लक्ष्य माना है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्याकरण का उद्देश्य भाषा सिखाना नहीं, अपितु भाषा के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों का ज्ञान कराना है :–

(i) भाषा रचना का ज्ञान।
(ii) वाक्यों मे आए शब्द–समूहों के अन्तर को स्पष्ट करना।
(iii) भाषा–सम्बन्धी कुछ विशेष प्रयोगों का अध्ययन करना।
(iv) भाषा से सम्बन्धित नियमों का कथन करना।

2.1.4 भाषा शिक्षण में व्याकरण का महत्त्व (Place of Grammar in Language Teaching)

व्याकरण की परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि भाषा की शुद्धता व्याकरण पर निर्भर करती है। इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए है।

(i) भाषा शिक्षण का कार्य व्याकरण के बिना अधूरा है।
(ii) व्याकरण भाषा का मित्र एवं सहचर है जो उसे सदैव सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है।
(iii) व्याकरण के सहयोग से शुद्ध लिखना और बोलना सरलता से आ जाता है।
(iv) प्रत्येक भाषा का अपना ध्वनि विचार (Phonolohy), शब्द विचार (Morphology) अर्थ विचार (Samanties) और वाक्य (Syntax) होता है। भाषा के पूर्ण ज्ञान के लिए इनका जानना आवश्यक है।
(v) अन्य भाषा या भाषाओं के सीखने में भी व्याकरण सहायक होता है।
(vi) भाषा की अशुद्धियां व्याकरण द्वारा ही सीखी जा सकती हैं, अन्यथा नहीं, व्याकरण के ज्ञान के बिना भाषा के प्रयोग में अव्यवस्था आ जाती है।
(vii) व्याकरण अध्यापक के लिए अत्यन्त आवश्यक है जिसका ज्ञान उसके शिक्षक को सफल बनाता है।
(viii) व्याकरण की शिक्षा भाषा की शिक्षा का एक आवश्यक अंग है।

इस प्रकार भाषा को शुद्ध बनाए रखने का काम व्याकरण द्वारा ही सम्पन्न होता है। दूसरे शब्दों में भाषा का उचित रहस्य समझने के लिए व्याकरण का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

2.1.5 व्याकरण की शिक्षा के उद्देश्य

व्याकरण की शिक्षा के कुछ महत्त्वपूर्ण उद्देश्य इस प्रकार है :–

1. व्याकरण का उद्देश्य भाषा को संयमित और नियंत्रित करना है।
2. भाषा के नियमों का विधिवत ज्ञान व्याकरण के द्वारा ही संभव हो सकता है।

3. चैम्पियन (Champion) के शब्दों में, व्याकरण के नियमों का ज्ञान, छात्रों में मौलिक वाक्य बनाने की योग्यता उत्पन्न करता है।
4. व्याकरण भाषा के स्वरूप की रक्षा करता है।
5. व्याकरण की शिक्षा से छात्रों की रचनात्मक वृत्ति में विकास होता है। उनकी आलोचनात्मक क्षमता में वृद्धि होती है।
6. व्याकरण भाषा का सहचर है। इसका कार्य सदैव भाषा की प्रगति में सहायता प्रदान करना है। पण्डित लज्जा शंकर के अनुसार, ''भाषा का शुद्ध रूप पहचानने में छात्रों के समर्थ बनाना ही व्याकरण का उद्देश्य है।''

इस प्रकार व्याकरण की शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य भाषा का शुद्ध एवं समुचित प्रयोग करना सिखाना है। व्याकरण साधन है।, साध्य नहीं। रामबर्न के अनुसार, ''व्याकरण को हमारा और विद्यार्थियों का दास होना चाहिए, न कि उनका और हमारा स्वामी।

व्याकरण भाषा का सच्चा मित्र है। यह उसे सच्चे रास्ते पर चलने के लिए प्रेरणा प्रदान करता है।

पण्डित करुणापति ने इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि, ''व्याकरण ज्ञान की अवहेलना से भाषा में उच्छृंलता आ जाती है और वह संस्कृति का विनाश कर देती है। भाषा–प्रयोग का उचित रहस्य समझने के लिए व्याकरण ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।''

2.1.6 व्याकरण शिक्षा के सम्बन्ध में विभिन्न विचार

भाषा के निर्माण में व्याकरण के अमूल्य सहयोग का विस्मरण नहीं किया जा सकता। ऐसा लगता है कि व्याकरण का ज्ञान हुए बिना, भाषा का ज्ञान हो ही नहीं सकता। परन्तु आधुनिक विचारधारा व्याकरण की अनिवार्यता का खण्डन करती है। उसके अनुसार व्याकरण का नीरस विषम यदि आरंभ से ही अनिवार्य बना दिया तो कोमल विद्यार्थियों के लिये यह विषय बोझ बन जाएगा और व्याकरण के प्रति अरुचि को जन्म देगा।

इस प्रकार व्याकरण की शिक्षा के प्रति दो विरोधी विचार अपने–अपने मत का समर्थन करते है। इस सम्बन्ध में संक्षिप्त रूप से विचार करना युक्ति संगत होगा।

(क) पहला मत

इस पक्ष को मानने वाले विद्वानों का कहना है कि भाषा–शिक्षण का कार्य व्याकरण के बिना असम्भव है। इसलिए व्याकरण का पाठ्यक्रम में महत्त्वपूर्ण स्थान रहना चाहिए। पतंजलि ने व्याकरण के अध्ययन की इस अमिट परम्परा को जारी रखने के लिये, अध्यापक व्याकरण का विशेष ध्यान रखते है।

इस मत के अनुसार विद्यार्थियों को व्याकरण की सैद्धांतिक शिक्षा अवश्य प्रदान करनी चाहिए।

(ख) दूसरा मत

कुछ विद्वानों ने व्याकरण की अनिवार्यता का खण्डन किया है। उसके अनुसार व्याकरण की कोई आवश्यकता नहीं। व्यक्ति बोल कर या पढ़ कर भाषा सीखता है, न कि नियमों को रटकर। व्याकरण के किसी सक्रिय व्यवहार के बिना भी भाषा सीखी जा सकती है।

इस मत को मानने वाले व्याकरण की शिक्षा को समय का नाश करना समझते हैं। इसी तथ्य के आधार पर व्याकरण की शिक्षा की कटु आलोचना की जा रही है। और इसे पाठ्यक्रम से बाहर रखने की चेष्टा हो रही है।

(ग) व्याकरण की शिक्षा के प्रति आधुनिक दृष्टिकोण

यह एक समविर दृष्टिकोण है। इसके अनुसार व्याकरण की अवहेलना करना उचित नहीं। व्याकरण केवल सैद्धांतिक नियमों का ही संकलन नहीं। इसकी शिक्षा उतनी ही देनी चाहिए, जितनी अपेक्षित हो। व्याकरण के व्यावहारिक प्रयोग पर बल देना चाहिए। इस सम्बन्ध में कुछ तथ्य इस प्रकार है:–

1. भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने के लिए व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है।
2. व्याकरण के दो रुप – (i) सैद्धांतिक तथा (ii) व्यावहारिक।
3. प्रारम्भिक कक्षाओं में व्याकरण का ज्ञान प्रयोग द्वारा ही कराया जाना चाहिए। अर्थात् व्याकरण के व्यावहारिक पक्ष पर बल देना चाहिए।
4. निम्नलिखित माध्यमिक कक्षाओं में बच्चों की परिभाषा का ज्ञान उदाहरणों के बाद समझना चाहिए।
5. रायबर्न ने भी इस बात की पुष्टि की है कि व्याकरण की शिक्षा छठी कक्षा से प्रारम्भ की जाए ताकि बालकों को व्याकरण के नियमों का ज्ञान हो जाए। व्याकरण के नियमों का ज्ञान होन पर, उनकी अभिव्यक्ति में स्पष्टता आ जाएगी और शैली के निर्माण में सहायता मिलेगी।
6. उचित माध्यमिक कक्षाओं मे छात्रों को व्याकरण का नियमित ज्ञान कराया जा सकता है क्योंकि इस अवस्था में पहुंचते–पहुचंते उनकी भाषा सम्बन्धी नींव सुदृढ़ हो जाती है। अब उन्हें सैद्धांतिक व्याकरण की शिक्षा दी जा सकती है।

इस प्रकार व्याकरण की शिक्षा का एक मनोवैज्ञानिक क्रम है और इसी क्रम के अनुसार व्याकरण की शिक्षा देनी चाहिए।

व्याकरण का आरंभ वाक्य द्वारा होना चाहिए, क्योंकि बालक पूर्ण वाक्य ही बोलता है। वाक्य ही अर्थ को शक्ति देता है, शब्द नहीं। पहले पूर्ण का ज्ञान कराना चाहिए, तब अंश का। वाक्य के पश्चात् वाक्य के मुख्य अंश–संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण एवं क्रिया तथा उनमें व्याप्त नियमों को उदाहरणों द्वार निरूपण कराना चाहिए।

छात्रों की सहायता से सिद्धांत–निरूपण और उसके बाद उनका प्रयोग तथा अभ्यास कराया जाना ही उचित है। इससे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि व्याकरण की शिक्षा व्याकरण के लिए न दी जाए। सैद्धांतिक व्याकरण के बदले प्रयोगात्मक या व्यावहारिक व्याकरण पढ़ाना चाहिए। भाषा का सामान्य ज्ञान हो जाने पर ही व्याकरण की शिक्षा दी जानी चाहिए।

2.1.7 व्याकरण की शिक्षण-प्रणालीयां

व्याकरण की शिक्षा देने के लिए बहुत–सी प्रणालियां प्रचलित हैं। इन में से कुछ का वर्णन नीचे दिया जा रहा है:

1. सूत्र प्रणाली या निगमन प्रणाली

इस विधि के अनुसार व्याकरण के नियम सूत्रों के रूप में बना दिए जाते हैं। फिर उनके उदाहरण देकर उनका प्रयोग बताया जाता है। यह विधि संस्कृत से आई है और आज भी इस प्रणाली का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण के रूप में यदि अध्यापक को संज्ञा पढ़ानी हो, तो पहले उसकी परिभाषा बताई जायेगी। इसके उपरान्त उसका उदाहरण बनाया जायेगा। परिभाषा एवं नियम पुस्तकों में रहते हैं। उन्हें रटा देना इस विधि का कार्य है।

यह विधि अमनोवैज्ञानिक तथा नीरस समझी जाती है। बालक बिना समझे ही नियमों को रट लेते हैं। वे उनका प्रयोग नही जानते।

2. आगमन विधि

यह विधि निगमन विधि के विपरीत है। इसे प्रयोग विधि भी कहा जाता है। इसमें पहले उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं और उन उदाहरणों के माध्यम से नियम या सिद्धांत स्थिर किए जाते हैं। इस प्रणाली में शिक्षण की अपेक्षा सीखने की भावना अधिक है। यह विधि छात्रों को सक्रिय रखती है। रायबर्न महोदय ने भी इस विधि का समर्थन किया है। उनके अनुसार ''अध्यापक आगमन विधि का ही प्रयोग करे, विभिन्न उदाहरणों को देखकर छात्र स्वयं ही नियम समझने लगेंगे।''

आगमन विधि में निम्नलिखित क्रम का अनुसरण किया जाता है :–

(i) उदाहरण (ii) विश्लेषण (iii) सामान्यीकरण (iv) परीक्षण (v) यह विधि ज्ञात से अज्ञात की ओर चलती है। ''विशेषण'' का पाठ पढ़ाते समय छात्रों को पूर्ववत् विदित 'संज्ञा' को आधार बना कर पाठ का विकास किया जा सकता है।

3. पाठ्य पुस्तक विधि

इस विधि को सूत्र– प्रणाली का दूसरा रुप कहा जा सकता है। अन्तर केवल इतना ही है कि जहां पहली पद्धति संस्कृत से हिन्दी में आई है। सूत्र प्रणाली में सूत्रों का सहारा लिया जाता है, परन्तु इस विधि में व्याकरण की पाठ्य–पुस्तकों से सहायता ली जाती है। छात्र इन पाठ्य–पुस्तकों में दिए हुए नियमों, उदाहरणों तथा परिभाषाओं को कण्ठस्थ कर लेते हैं। फिर अध्यापक इस बात का प्रयास करता है कि छात्र इन नियमों का प्रयोग भिन्न–भिन्न परिस्थितियां में करें।

यह विधि नियमबद्धता के कारण नीरस एवं अमनोवैज्ञानिक है। यह विधि उच्च कक्षाओं के लिए उपयोगी हो सकती है। आजकल व्याकरण की शिक्षा प्रायः इसी प्रणाली से दी जाती है।

4. भाषा-संसर्ग विधि (Direct Language Method)

इस विधि के प्रतिपादकों का मत है कि अलग से व्याकरण की शिक्षा देना उपयुक्त नहीं हो सकता। उनका विचार है कि यदि हम चाहते हैं कि विद्यार्थियों का भाषा पर पूरा अधिकार हो तो उन्हें ऐसे लेखकों की रचनाएं पढ़ने को दी जाएं, जिनका भाषा पर अच्छा अधिकार हो। इससे छात्रों को भाषा का ज्ञान हो जाएगा और भाषा के ज्ञान के उपरांत उन्हें व्याकरण की जानकारी स्वाभाविक रूप से ही जाएगी।

कुछ विद्वानों ने इस विधि को भी अपूर्ण माना है। उनके मतानुसार इस विधि से व्यावहारिक व्याकरण की शिक्षा दी जा सकती है। नियमित व्याकरण पढ़ाने के लिए अलग से आगमन विधि का सहारा लेना पड़ता है। इसके अतिरिक्त इस प्रणाली से भाषा के रूप का ज्ञान देने में बहुत अधिक समय लगेगा। इस प्रकार व्याकरण –शिक्षण की यह विधि सहायक तो हो सकती है परन्तु अपने में पूर्ण न होने के कारण इस पर निर्भर नहीं रहा जा सकता।

5. समवाय विधि

इस विधि के अनुसार व्याकरण के नियमों या सिद्धांतों का ज्ञान किसी व्याकरण पुस्तक द्वारा नहीं कराया जाता। सूक्ष्म तथ्यों का ज्ञान व्यावहारिक कार्यो या उदाहरणों के माध्यम से कराया जा सकता है। दूसरे शब्दों में पाठ्य पुस्तक पढ़ते समय या रचना कार्य करते समय प्रासंगिक रीति से व्याकरण के नियमों का ज्ञान कराया जा सकता है। व्याकरण मौखिक कार्य, वाचण और रचना के सहयोग से सिखाया जाता है। इसे सहयोग प्रणाली भी कहा जाता है।

इस विधि में भी कुछ न्यूनताएं रह जाती हैं। इसमें केवल व्यावहारिक व्याकरण की शिक्षा दी जा सकती है। नियमित व्याकरण की शिक्षा सम्भव नहीं इसके अतिरिक्त, इस विधि से व्याकरण की शिक्षा में कोई तार्किक क्रम नही रहेगा। फिर भी स्वाभाविक ढंग से इस विधि को अपनाना उपयोगी है। इससे व्याकरण के नीरस नियम प्रासंगिक रीति से बड़ी सरलता से समझाये जा सकते है।

6. खेल विधि

यह विधि व्याकरण की रोचक ढंग से शिक्षा प्रदान करती है। खेल–खेल में व्याकरण सिखाने से व्याकरण की नीरसता छात्रों के मार्ग में बाधक नहीं बनेगी। कुछ नियमों या सिद्धांतों को भी आसानी से सिखाया जा सकता है।

छोटी कक्षाओं में इस विधि को बड़ी सफलता से अपनाया जा सकता है। खेल–खेल में लिंग, भेद, वचन, आदि का ज्ञान कराया जा सकता है। भाषा–शिक्षण की कुछ नवीन विधियों में भी इस विधि को प्रथमं स्थान दिया गया है।

2.1.8 व्याकरण-शिक्षण की समस्त विधियों के प्रति संभावित दृष्टिकोण

व्याकरण–शिक्षण की सभी विधियां गुण–दोष युक्त हैं। कोई एक विधि अपने आप में पूर्ण नहीं है। ऐसी स्थिति में विचारणीय बात यह है कि इन विधियों को अलग–अलग न मानते हुए एक दूसरे की पूरक मानना चाहिए। उनमें सन्तुलन स्थापित करना अपेक्षित है।

प्रारम्भिक कक्षाओं में भाषा संसर्ग विधि तथा बड़ी कक्षाओं में आगमन विधि का प्रयोग लाभकारी रहेगा। अध्यापकों को यथास्थान, छात्रों के स्तर का ध्यान रखकर उपयुक्त विधियों के माध्यम से व्याकरण की शिक्षा देनी चाहिए। श्री पी.सी.रेन (P.C. Wren) के अनुसार ''व्याकरण का शिक्षण आगमन विधि से होना चाहिए और उसका प्रयोग निगमन विधि से।''

व्याकरण का काम भाषा सिखाना नहीं, केवल भाषा को व्यवस्थित करना है। इसलिए व्याकरण की विभिन्न विधियों का प्रयोग समय और स्थिति को सम्मुख रखते हुए उचित ढंग से होना चाहिए। जो विधि जहां उपयोगी लगे उसे प्रयुक्त करना चाहिए। इस दृष्टि से अध्यापक का कर्त्तव्य और भी बढ़ जाता है। क्योंकि व्याकरण जैसे नीरस विषय को रुचिकर ढंग से पढ़ाना उसी का काम है। उसे हिन्दी भाषा का पूरा ज्ञान होना चाहिए और अध्यापन विधियों पर उनका पूर्ण अधिकार होना चाहिए।

2.1.9 व्याकरण की शिक्षा को रुचिकर बनाने के लिए कुछ सुझाव

यद्यपि 'व्याकरण' भाषा का एक प्रमुख अंग है, फिर भी इस विषय को रुखा या नीरस समझा जाता है। विद्यार्थी इसे पढ़ना नहीं चाहते। इसलिए हिन्दी व्याकरण को शिक्षा की रुचिकर एवं सरल बनाने के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए :–

1. व्याकरण का प्रारम्भ तब तक न किया जाए, जब तक कि छात्रों को भाषा का ज्ञान न हो जाए।
2. व्याकरण की नियमित शिक्षा का आरम्भ छोटी कक्षाओं में न करके, माध्यमिक कक्षाओं से करना चाहिए।
3. व्याकरण पढ़ाने की प्रणाली बालकों की अवस्था के अनुकूल होनी चाहिए।
4. पाठ्य पुस्तक में गद्य जो पाठ हों, व्याकरण के नियमों का उनसे समन्वय किया जाए।
5. व्याकरण की शिक्षा को यथा सम्भव रुचिकर बनाने का प्रयत्न किया जाए।
6. बालकों ने व्याकरण के जिन नियमों को पढ़ा है, उनका उचित अभ्यास कराया जाए।
7. व्याकरण की शिक्षा में आगमन एवं निगमन दोनों ही विधियों का साथ–साथ प्रयोग किया जाए।
8. व्याकरण के पाठ्यक्रम में एक क्रम होना चाहिए जिससे कि विद्यार्थी स्वाभाविक रुप से धीरे–धीरे, एक सोपान से दूसरे की आरे बढ़ सकें।
9. व्याकरण की शिक्षा दृश्य–क्षव्य उपकरणों के माध्यम से दी जाए। चार्ट तालिकाएं, चित्र आदि का प्रयोग व्याकरण शिक्षण में अत्यन्त आवश्यक है।
10. द्वितीय भाषा पढ़ाने के लिए तुलनात्मक विधि का प्रयोग करना चाहिए। हिन्दी भाषा के व्याकरण की तुलना छात्रों की मातृ भाषा के व्याकरण से की जाए।
11. बालकों की भाषा सम्बन्धी अशुद्धियों को सुधारने का प्रयास करना चाहिए, लेकिन इसके लिए उन्हें दण्ड न दिया जाए।
12. छात्रों को यथासम्भव नियमों के रटाने से बचाया जाए।
13. व्याकरण की शिक्षा प्रदान करने वाले अध्यापक को स्वयं हिन्दी भाषा के व्याकरण का ठोस ज्ञान रहना चाहिए। हिन्दी भाषा की विचित्रता तथा विशेषताओं से उससे अवगत होना चाहिए।

अन्त में इतना ही कहना उचित होगा कि भाषा– शिक्षण प्रयोग में व्याकरण–शिक्षण एक अनिवार्य अंग है। मनोवैज्ञानिक ढंग से नवीन प्रणाली द्वारा पढ़ाना चाहिए।

निगमन प्रणाली तथा आगमन प्रणाली को यदि मिश्रित रूप में लाया जाए तो अधिक लाभदायक हो सकता है।

1. सूत्र प्रणाली की व्याख्या करें।

.....

.....

2. समवाय विधि क्या है?

.....

.....

2.1.10 सारांश

व्याकरण की शिक्षा भाषा की शिक्षा का आवश्यक अंग है। भाषा को शुद्ध बनाए रखना, उसको संवारना तथा परिष्कृत करना व्याकरण के प्रमुख काम हैं।

व्याकरण को 'शब्दानुशासन' कहा गया है। जिसके द्वारा अर्थस्वरूप से शब्द की सिद्धि होती है। उसे व्याकरण कहते हैं। कुल मिलाकर व्याकरण भाषा का व्यावहारिक विश्लेषण हैं।

भाषा की शुद्धता व्याकरण पर निर्भर करती है। दूसरे शब्दों से भाषा शिक्षण का कार्य व्याकरण की शिक्षा के बिना अधूरा है। व्याकरण भाषा का मित्र एवं सहचर है जो उसे सदैव सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है। वास्तव में भाषा का उचित रहस्य समझने के लिए व्याकरण का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

व्याकरण की शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य है – भाषा को संयमित और नियंत्रित करना। व्याकरण के ज्ञान से छात्र भाषा के गुणों और दोषों को पहचानने लगते है। व्याकरण का कार्य सदैव भाषा की प्रगति में सहायता करना है।

पण्डित लज्जाशंकर ने उचित ही कहा है, ''भाषा का शुद्ध रूप पहचानने में छात्रों को समर्थ बनाना ही व्याकरण का उद्देश्य है।''व्याकरण साधना है साध्य नहीं। यह भाषा का सेवक है स्वामी नहीं।

व्याकरण की शिक्षा के प्रति दो विरोधी मत हैं। एक मत के अनुसार व्याकरण की नियमित शिक्षा अनिवार्य है। छात्रों को व्याकरण की सैद्धान्तिक शिक्षा अवश्य देनी चाहिए।

दूसरे मत के अनुसार व्याकरण की शिक्षा अनिवार्य नहीं होनी चाहिए। छात्र बोलकर या पढ़कर भाषा सीखता है न कि नियमों को रटकर। किसी सक्रिय व्यावहार के बिना भी सीखी जा सकती है।

एक अन्य मत व्याकरण के शिक्षा के प्रति सम्भावित दृष्टिकोण को अपनाने की सिफारिश करता है। इसके अनुसार व्याकरण की शिक्षा उतनी ही देनी चाहिए जितनी अपेक्षित हो! व्याकरण के व्यावहारिक प्रयोग पर बल देना चाहिए।

व्याकरण की शिक्षा का एक मनोवैज्ञानिक क्रम है। छोटी कक्षाओं में प्रयोगात्मक व्याकरण की शिक्षा देनी चाहिए तथा उच्च माध्यमिक कक्षाओं में छात्रों को व्याकरण नियमित ज्ञान कराना चाहिए।

व्याकरण शिक्षण की अनेक प्रणालियां हैं, जैसे – निगमन प्रणाली, आगमन, पाठ्य–पुस्तक प्रणाली, भाषा संसर्ग प्रणाली, समवाय विपधि तथा खेल विधि।

इन सभी विधियों का प्रयोग यथास्थान छात्रों के स्तर के अनुरुप करना चाहिए। ये सभी एक दूसरे के पूरक हैं। इसमें सन्तुलन स्थापित करना चाहिए और व्याकरण की शिक्षा को रुचिकर तथा सहज बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

इसके लिए अध्यापक को हिन्दी भाषा के व्याकरण का पूरा ज्ञान होना चाहिए। व्याकरण छात्रों पर लादना नहीं चाहिए। व्याकरण की शिक्षा दृश्य श्रव्य साधनों के माध्यम से देनी चाहिए। छात्रों को व्याकरण के नियम रटने से बचाना चाहिए।

निगमन प्रणाली तथा आगमन प्रणाली का मिश्रित रूप ही भाषा की शिक्षा की उत्तम तथा सफल प्रणाली है।

2.1.11 स्वयं जांच अभ्यास

खाली स्थान भरो।

1. .....विधि निगमन विधि के विपरीत है।
2. .....विधि को सूत्र प्रणाली का दूसरा रूप कहा जाता है।
3. खेल खेल में व्याकरण सिखाने की विधि को.....कहते हैं।
4. व्याकरण शब्द.....प्रत्यय के योग से बना है।

उत्तर : 1. आगमन 2. पाठ्य–पुस्तक विधि
3. खेल विधि 4. वि+आ+कृ+धातु+ल्यूट

2.1.12 अभ्यासात्मक प्रश्न

1. किसी भाषा के व्याकरण से आप क्या समझते हैं? व्याकरण की शिक्षा के महत्व को स्पष्ट करते हुए व्याकरण शिक्षण के उद्देश्य बताइए।
2. व्याकरण शिक्षण की आगमन–निगमन प्रणाली किसे कहते हैं। उदाहरण सहित इस प्रणाली की व्याख्या कीजिए।
3. हिन्दी भाषा की शिक्षा में व्याकरण का क्या स्थान है? इसकी व्याख्या करते हुए बताएं कि आप माध्यमिक स्तर पर व्याकरण के किन पक्षों पर अधिक जोर देंगे?
4. ''व्याकरण शिक्षण के बिना भाषा शिक्षण अधूरा है।'' इस कथन के औचित्य पर प्रकाश डालिए।
5. व्याकरण की शिक्षा की विभिन्न विधियों का उल्लेख करते हुए लिखें कि आपकों कौन–सी विधि सबसे अच्छी लगती हैं और क्यों?
6. व्याकरण का विषय विद्यार्थियों को शुष्क और नीरस क्यों लगता हैं? इसे रुचिकर और सरल बनाने के लिए आप क्या करेंगे?

2.1.13 सहायक पुस्तकें

1. के. क्षत्रिया मातृ–भाषा शिक्षण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा। पृष्ठ 210–216
2. केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा भाषा शिक्षण तथा भाषा विज्ञान।
3. पण्डित सीताराम चतुर्वेदी भाषा की शिक्षा
4. भाटिया नारंग आधुनिक हिन्दी शिक्षण विधियां, प्रकाश ब्रदर्ज, लुधियाना। पृष्ठ 306–310
5. तारकेश्वर प्रसाद सिंह हिन्दी भाषा शिक्षण, मंजूषा।
6. देवेन्द्र कुमार कौशिक हिन्दी भाषा का शिक्षण, शारदा ब्रदर्ज, लुधियाना।
7. योगेन्द्रजीत हिन्दी भाषा शिक्षण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा। पृष्ठ 178–184
8. रामशकल पाण्डेय हिन्दी शिक्षण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
9. रघुनाथ सफाया हिन्दी शिक्षण विधि, पंजाब किताब घर, जालन्धर। पृष्ठ 283–296
10. रमन बिहारी लाल हिन्दी शिक्षण, रस्तोगी पब्लिकेशन्ज, मेरठ। पृष्ठ 277–287
11. लक्ष्मी के. ओड भाषा शिक्षण की नवीन विधियां।

Updated on February, 2026

पाठ नं–2.2 लेखिका– श्रीमती मनदीप कौर

Converted into SLM : Dr. Sharmila

दृश्य–श्रव्य साधन अर्थ, महत्व, प्रकार, प्रयोग एवं प्रयोग में सावधानिया

2.2.1 उद्देश्य
2.2.2 भूमिका
2.2.3 दृश्य–श्रव्य साधनों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
2.2.4 अर्थ
2.2.5 दृश्य–श्रव्य साधनों का महत्व एवं उपयोगिता
2.2.6 दृश्य–श्रव्य साधनों के प्रकार
2.2.7 दृश्य–श्रव्य साधनों का उचित प्रयोग एवं प्रयोग में सावधानियाँ
2.2.8 सारांश
2.2.9 स्वयं जांच अभ्यास
2.2.10 अभ्यासात्मक प्रश्न
2.2.11 सहायक पुस्तकें

2.2.1 उद्देश्य

(i) दृश्य श्रव्य साधनों को परिभाषित कर सकेंगे।
(ii) दृश्य श्रव्य साधनों में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे।
(iii) दृश्य श्रव्य साधनों के महत्व के बारे में बता पाएंगे।
(iv) दृश्य श्रव्य साधनों के प्रकारों की व्याख्या कर सकेंगे।

2.2.2 भूमिका

दृश्य–श्रव्य साधनों का प्रयोग भारत तथा अन्य देशों में प्राचीन काल से ही होता आ रहा है, भले ही उनका स्वरूप आज के आधुनिक वैज्ञानिक साधनों की तरह नहीं था। आदि काल के लोग अपने विचारों को दूसरे के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए रेखाचित्रों और प्रतीकों का ही प्रयोग करते थे क्योंकि उस समय शब्दावली का विकास नहीं हुआ था। गुरुकुल एवं आश्रम प्रथा में धार्मिक शिक्षा, वैदिक नियमों को सिखाने,

हवन, यज्ञ आदि के लिए वेदी का निर्माण करने के नियम ताड़पत्रें या भोजपत्रें पर रेखाचित्रें के माध्यम से सिखाये जाते थे। देखा जाए तो वैदिक पाठ्शालाओं में शिक्षा इन्हीं साधनों से दी जाती थी। ताड़पत्रें पर चित्र बनाने की परंपरा दसवीं शताब्दी से मानी जाती है जो बहुत समय तक भारत में चलती रही। अठाहरवीं शताब्दी में ताड़पत्रें पर लिखित रामायण में चित्र भी थे। इससे यह सिद्ध होता है कि लिखित सामग्री को अच्छे ढंग से समझाने का माध्यम चित्र ही थे।

2.2.3 दृश्य–श्रव्य साधनों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्राचीन काल के प्रसिद्ध मठ तथा ज्ञानपीठ तक्षशिला, नालन्दा आदि के अवशेषों में वहाँ की दीवारों इत्यादि पर जो चित्र पाये गये हैं उससे सिद्ध होता है कि भारतीय शिक्षक शिक्षा में दृश्य साधनों को कितना महत्व देते थे। साँची स्तूप, आजन्ता, एलोरा एवं खजुराहो आदि के मन्दिरों के भिन्न चित्र इसके उदाहरण है। सातवीं शताब्दी की प्रसिद्ध पुस्तक 'हर्ष–चरित्र' में दृश्य–श्रव्य साधनों को प्रयोग का भी वृतान्त मिलता है। इस रचना में एक रचनाकार द्वारा जीवन में किए गए दुष्कर्मों के दण्ड यमराज द्वारा देते दिखाये गये थे और दिखाने वाला उन दृश्यों का वर्णन कर रहा था। इस प्रकार के चित्रें में लोक में किए गए कार्यों का फल परलोक में दर्शाया गया था। इन चित्रें के द्वारा जनता पर यह प्रभाव पड़ा कि सन्मार्ग पर चलते हुए जीवन बिताना श्रेयस्कर है। चित्रें का प्रभाव शब्दों की अपेक्षा ज्यादा प्रभावशाली होता है। उस समय चित्र प्राये धार्मिक और यमलोक के ही होते थे क्योंकि जनता को उच्च चरित्र की शिक्षा देना उद्देश्य था। रामायण, महाभारत, नलदमयन्ती, बभ्रुवाहन आदि की कथाओं को चित्रें के माध्यम से दिखाते हुए लय एवं ताल के साथ जनता को सुनाई जाती थी।

कठपुतलियों द्वारा भी धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। पश्चिमी शिक्षा के इतिहास में दृश्य साधनों का प्रयोग करने का श्रेय एराज्मस, कॉमीनियस, रूसो, पेस्टोलॉजी और फ्रोबेल को मिलता है उन्होंने छोटे बच्चों को शिक्षा में दृश्य–श्रव्य साधनों के प्रयोग की बात की है। उन्होंने कहा था कि बच्चों को कहानियों, चित्रें और खेलों के द्वारा फ्याना चाहिए। दृश्य सामग्री से युक्त सबसे पहली पुस्तक जॉन ऐमॉस कॉमीनियस द्वारा तैयार की गई थी जिसका नाम था 'आर्बिस सेन्सूलियम पिक्टस।'

2.2.4 अर्थ

आज हम 21वीं सदी के निवासी हैं। आज सूचना व संचार के क्षेत्रें में हमने जो उपलब्धि हासिल की है वह राष्ट्र के लिए मेरूदण्ड बन गई है। आज विज्ञान, प्रौद्योगिकी, जनसंचार आदि अनेक क्षेत्रों में तो सूचनाओं की प्राप्ति के लिए उपकरणों का प्रयोग हो ही रहा है इसके साथ–साथ बालकों को बेहतर अधिगम कराने के उद्देश्य से भी भिन्न–भिन्न दृश्य–श्रव्य साधनों का प्रयोग किया जा रहा है। प्रारंभ में ऐसे साधनों का उपयोग विज्ञान एवं तकनीकी के शिक्षण में ही किया जाता था किन्तु कालान्तर में इसका उपयोग भाषा–शिक्षण में भी किया जाने लगा। अब यह सिद्ध हो चुका है कि

किसी भी कार्य को सीखने में व्यक्ति की जितनी अधिक ज्ञानेन्द्रियाँ सक्रिय होती है उतना ही स्थायी अधिगम होता है।

बालक 1: चखकर, 2: छूकर, 3: सूंघकर, 11: सुनकर तथा 83: देखकर सीखते हैं।

थॉमस एम. रिस्के "ज्ञानेन्द्रिय अनुभव द्वारा ही किसी भी वस्तु या क्रिया का मानसिक चित्र बनता है और इस मानसिक चित्र के आधार पर ही तत्सम्बन्धी प्रत्यय बनते हैं। अतः शिक्षण द्वारा ज्ञान के स्थायीकरण, प्रत्यक्षीकरण एवं उसे मूर्तता प्रदान करने के लिए ऐसे शैक्षणिक उपकरणों की आवश्यकता एवं महत्त स्वयं सिद्ध है जिनके माध्यम से वस्तु क्रिया, भाव तथा विचार का बिम्ब–ग्रहण संभव हो सके।"

विरिच एवं शूलेर "दृश्य–श्रव्य विधियाँ और वस्तुएँ भावपूर्ण सीखने, प्रबल छात्र रूचि और उत्साह तथा विद्यालय में सफलता के लिए अति लाभदायक आधार है।"

दृश्य–श्रव्य साधन शिक्षण की एक ऐसी सहायक सामग्री है जिनके प्रयोग से स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर बढ़ते हुए छात्रें के ज्ञान को पुष्ट करने में बल मिलता है।

2.2.5 दृश्य–श्रव्य साधनों का महत्व एवं उपयोगिता

दृश्य–श्रव्य सामग्री के महत्व का निरूपण हम इन तथ्यों के आधार पर कर सकते हैं:

1. विषय–वस्तु को रोचक बनाने हेतु– प्रत्यक्ष अनुभव मौखिक श्रवण से सौ प्रतिशत उत्तम होते है। दृश्य–श्रव्य साधन बालकों के सामने विषय–वस्तु को रोचक बनाकर प्रकट करते हैं।

2. विषय की स्पष्टता– अध्यापक के मौखिक निर्देशन में कोई शब्द बालकों को समझ में नहीं आता तो वही विषय–वस्तु यदि अध्यापक श्यामपट्ट पर लिखकर बताता है तो वह अधिक स्पष्टता से समझ में आती है।

3. शिक्षण में विविधिता– कक्षा में प्रत्येक बालक भिन्न–भिन्न व्यक्तित्व, क्षमता व योग्यता रखता है। "शिक्षण सभी के लिए हो, सब शिक्षण के लिए नहीं इस आधार पर प्रत्येक छात्र के स्तर तक शिक्षण करने के लिए भिन्न–भिन्न साधनों की आवश्यकता पड़ती है।"

4. ज्ञान के स्थायित्व हेतु– दृश्य–श्रव्य दोनों के प्रयोग से ज्ञान को अधिक समय तक स्थायी बनाया जा सकता है। ऐसे नियम जो बालक मौखिक अभिव्यक्ति से समझ नहीं पाते उन्हें वास्तविक पदार्थों की सहायता से याद करवाया जा सकता है।

5. विद्यार्थियों को सक्रिया बनाने में सहायक– पाठ्य–पुस्तक से अध्ययन छात्र में निष्क्रियता ला देता है। शिक्षण उतना ही सफल होगा, जितने विद्यार्थी सक्रिय होंगे। कक्षा में विद्यार्थी निष्क्रियता श्रोता से अधिक नहीं होते। कक्षा में यदि अध्यापक व्याख्या के समय केवल भाषण न देकर किसी–न किसी सामग्री के द्वारा उसे रूचिकर बना दे तो विद्यार्थी बेहतर अधिगम कर सकते हैं।

6. अधिगम गति में तेजी– अनुदेशन सामग्री से उनकी सभी ज्ञानेन्दियाँ सक्रिय हो जाती हैं। अतः उनके अधिगम की गति बच्य जाती है।

7. समय व शक्ति की बचत– इस साम्रगी के द्वारा विद्यार्थी कम समय व कम शक्ति में अधिक अधिगम करने में समर्थ होता है तथा शिक्षक भी कम ऊर्जा व्यय करके अधिक जानकारी प्रदान करने का सामर्थ्य रखता है।

8. विद्यार्थियों के लिए प्रेरक– अध्यापक जब कक्षा–कक्ष में भिन्न–भिन्न चित्रें, चित्र–प्रर्वधक यन्त्रें, चार्टों का प्रयोग करता है तो विद्यार्थी उन्हें देखकर उनके प्रति आकृष्ट होता है तथा वैसे ही चित्र, मॉडल बनाने के लिए हठ–निश्चयी हो जाता है। ऐसे उपकरण उसकी सृजनात्मक क्षमता को बच्याने में उसकी सहायता करते हैं।

9. शिक्षण में नवीनता– अनुदेशनात्मक सामग्री परम्परागत शिक्षक–विद्यार्थी सम्बन्धों से अलग हटकर कक्षा कक्ष में नवीनता, ऊर्जा व स्{र्ति लाती है। शिक्षक भी ऐसी तकनीकों से कक्षा शिक्षण में नवीनता अनुभव करते हैं।

10. शिक्षण–सूत्रों के अनुकूल– शिक्षण के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले दृश्य–श्रव्य साधन शिक्षण सूत्रों के अनुरूप होते हैं।

11. ज्ञान को सुबोध बनाने में सहायक– शिक्षण जितना अधिक रुचिकर होगा विद्यार्थियों के लिए उतना ही सुबोध तथा सुग्राह्य होगा। शिक्षण के दौरान अध्यापक को कभी सूक्ष्म ज्ञान भी प्रदान करना पड़ता है जो अत्यन्त कठिन कार्य होता है। विद्यार्थियों का बौद्धिक स्तर इतना विकसित नहीं होता है जिन्हें व्याख्या द्वारा समझाया जा सके। ऐसी स्थिति में दृश्य–श्रव्य साधनों द्वारा सूक्ष्म ज्ञान को सरल एवं सरस ढंग से प्रदान कर सकते हैं।

12. कल्पना शक्ति का विकास– दृश्य–श्रव्य साधनों के प्रयोग से विद्यार्थियों में कल्पना शक्ति विकसित होती है। वे चित्र, मॉडल द्वारा सुनी हुई चीजों (वस्तुओं) को मूर्त रूप में देखते हैं और विद्यार्थियों में उसके समान वस्तु को बनाने की कल्पना शक्ति उत्पन्न होती है।

13. आत्मविश्वास में सहायक– दृश्य–श्रव्य साधनों से विद्यार्थी और अध्यापक में आत्मविश्वास पनपता है। अध्यापक अपने तथ्यों को प्रमाणिक बनाने के लिए शिक्षण साधनों का प्रयोग करता है।

14. शब्दावली में वृद्धि– दृश्य–श्रव्य साधनों के द्वारा विद्यार्थियों को नये–नये शब्द सुनने एवं प्रयोग करने के रूप में जानने का अवसर मिलता है। रेडियो, टी.वी. टेलीफोन आदि का प्रयोग करते समय नये–नये शब्द सुनते हैं तथा ग्रहण करते हैं।

15. कक्षा में समूचे विश्व का दर्शन– दृश्य–श्रव्य साधनों द्वारा कक्षा में ही समूची दुनिया के बारे में बताया जा सकता है। इन साधनों के माध्यम से विद्यार्थी वास्तविकता का अनुभव करते हुए किसी भी स्थान, व्यक्ति, वस्तु का प्रत्यक्ष दृश्य प्रस्तुत करते हैं।

अतः दृश्य–श्रव्य साधनों द्वारा विद्यार्थी प्रत्येक ज्ञान, कक्षा के भीतर ही प्राप्त कर सकते हैं।

16. सामूहिक शिक्षण– विभिन्न वाच्य विधियों जैसे भाषण, व्याख्या प्रश्नोत्तर आदि से विभिन्न मानसिक स्तर के विद्यार्थी एक साथ ज्ञानार्जन नहीं कर पाते जबकि दृश्य–श्रव्य साधनों से विभिन्न मानसिक योग्यताओं के विद्यार्थी एक साथ ज्ञान अर्जित कर सकते हैं। अतः दृश्य–श्रव्य साधनों द्वारा एक सार शिक्षण व्यवस्था की जा सकती है।

17. सहकारिता की भावना– सामूहिक रूप से शिक्षण व्यवस्था विद्यार्थियों में सहकारिता व सहयोग की भावना पैदा करती है। अध्यापक विद्यार्थियों के सहयोग से दृश्य–श्रव्य साधनों का उपयोग करता है जिससे विद्यार्थी अध्यापक के साथ आत्मीयता का अनुभव करते हैं। उनमें परस्पर सहयोग की भावना विकसित होती है। वह इकट्ठे काम करना सीखते हैं तथा अपने विचारों का आदान–प्रदान करने तथा दूसरों के विचारों का आदर करना सीखते हैं।

18. सृजनात्मक प्रवृत्तियों का विकास– दृश्य–श्रव्य साधन अध्यापक व विद्यार्थी दोनों में सृजनात्मक शक्तियाँ विकसित करते हैं। अध्यापक पाठ के अनुसार इन साधनों को स्वयं निर्मित करता है और पाठ के उपयुक्त स्थलों पर उन्हें दर्शाने की योजना बनाता है। विद्यार्थी भी अध्यापक द्वारा निर्मित साधनों से प्रभावित होकर स्वयं उन्हें बनाने की चेष्टा करते हैं जिससे अध्यापक तथा विद्यार्थी दोनों की कलात्मक व सृजनात्मक प्रवृत्तियाँ जागृत होती हैं।

19. विद्यार्थी के गुण–दोषों का ज्ञान– दृश्य–श्रव्य साधन द्वारा अध्यापक शीघ्र ही विद्यार्थी की व्यक्तिगत भिन्नताओं से परिचित हो जाता है। उसे प्रत्येक विद्यार्थी के मानसिक स्तर का ज्ञान हो जाता है तथा उसमें छिपे गुणों व अवगुणों से परिचित होता है। इन साधनों की व्यवस्था में विद्यार्थी का क्या योगदान है, इनके माध्यम से वह कहां तक ज्ञानार्जन कर सका है, यह सब जानकारी दृश्य–श्रव्य साधनों के उपयोग से होती है। भाषा शिक्षण में कैसेट व टेप से विद्यार्थियों की उच्चारण सम्बन्धी अशुद्धियों की जानकारी होती है।

20. अध्यापक की अनुपस्थिति में शिक्षण– विडियो, कैसेट, टेप आदि उपकरणों से अध्यापक अपनी अनुपस्थिति में भी शिक्षण कार्य जारी रख सकता है तथा एक समय में विभिन्न कक्षाओं में बैठे विद्यार्थियों की एक साथ शिक्षण व्यवस्था की जा सकती है।

21. वास्तविक पदार्थ की दुरूहता में सहजता– प्रत्यक्ष अनुभव सम्पूर्ण ज्ञानार्जन का आधार हैं परन्तु उन्हें प्राप्त करने के अवसर बहुत सीमित होते हैं। कभी–कभी कोई वास्तविक पदार्थ अत्यधिक, जटिल, बड़े आकार के, अधिक छोटे, तीव्र गति के या मन्द गति के, समयातीत अथवा ऐतिहासिक होते हैं। ऐसी परिस्थितियों में प्रत्यक्ष अनुभव नहीं हो सकता। अतः किसी मॉडल, चित्र, फिल्म आदि की सहायता से उन्हें दर्शाया जा

सकता है। ऐतिहासिक इमारतों, मौसम, प्रादेशिक जानकारी, कवियों व लेखकों व महापुरुषों के जीवन सम्बन्धी घटनाओं आदि को दृश्य–श्रव्य उपकरणों से बड़ी सहजता से दिखाया जा सकता है।

22. सभ्यता संस्कृति का दिग्दर्शन– दृश्य–श्रव्य साधन सभ्यता संस्कृति का दिग्दर्शन कराते हैं। चाहें वे किसी भी समय, प्रदेश व देश की हों। चित्र, चलचित्रें, ग्रामोफोन आदि से वहाँ के रीति रिवाज, वेश भूषा व भाषा आदि का ज्ञान होता है। साहित्य के इतिहास में जिनकी कल्पना की जाती है, दृश्य–श्रव्य साधनों में वह साकार हो जाते हैं।

23. शैक्षणिक वातावरण के निर्माण में सहायक– शिक्षण प्रक्रिया में शैक्षणिक वातावरण की महत्वपूर्ण भूमिका है। साहित्य की विभिन्न विधाओं के शिक्षण में दृश्य–श्रव्य उपयोगी साधन है। जैसे गद्य में कहानी, निबन्ध, नाटक आदि कराने के लिए उनसे सम्बन्धित मॉडल चित्र आदि का प्रदर्शन उपयुक्त शैक्षणिक वातावरण निर्मित करता है उसी प्रकार कविता शिक्षण में कोई प्राकृतिक वातावरण दर्शाया जा सकता है।

24. पाठ्य पुस्तक में सहायक– दृश्य–श्रव्य साधन पाठ्य पुस्तक में संकलित पाठों को रुचिकर तथा सरल बनाते हैं। वह पाठ्य–पुस्तक की सैद्धान्तिकता को कम करते हैं। इन साधनों के प्रयोग से पाठ का प्रस्तुतीकरण विद्यार्थियों को पाठ्य–पुस्तक पढ़ने को प्रेरित करता है। अतः दृश्य–श्रव्य साधन पाठ्य–पुस्तक के अध्ययन में सहायक हैं।

25. शिक्षण उद्देश्यों की पूर्ति– दृश्य–श्रव्य साधन भाषा शिक्षण के उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। उदाहरणार्थ, कविता शिक्षण के उद्देश्य जैसे विद्यार्थियों में सौन्दर्यनुभूति उत्पन्न करना, कवि के भावों से तादात्म्य स्थापित करना, काव्य के प्रति रूचि उत्पन्न करना आदि हैं।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि दृश्य–श्रव्य सहायक सामग्री से शिक्षण को रोचक एवं प्रभावी बनाया जाता है। कम–से–कम समय में अत्यधिक ज्ञान भी प्रदान किया जा सकता है और ज्ञान को स्थायी बनाया जा सकता है।

2.2.6 दृश्य–श्रव्य साधनों के प्रकार

दृश्य–श्रव्य–साधनों को मुख्यते तीन वर्गों में बांटा जा सकता है–

(i) **श्रव्य–उपकरण** (Audio Aids) अर्थात् वे उपकरण जिन्हें सुना जा सके। इन में कानों का प्रयोग होता है, जैसे, रेडियो, ग्रामोफोन, टेप–रिकार्डर, आदि।

(ii) **दृश्य–उपकरण** (Visual Aids) अर्थात् वे उपकरण जिन का सम्बन्ध देखने से है जैसे–मूक चित्र, प्रोजैक्टर, चित्र–विस्तारक यन्त्र, मानचित्र, मॉडल, चार्ट, कार्टून, श्यामपट तथा अन्य विभिन्न प्रकार के बोर्ड आदि।

(iii) **श्रव्य–दृश्य उपकरण** (Audio-Visual aids) अर्थात वे उपकरण जिन का सम्बन्ध कानों और आँखों दोनों के साथ हो जैसे नाटक, चल–चित्र, टेलीविज़न आदि।

दृश्य–उपकरण :

1. श्यामपट

श्यामपट शिक्षण का अत्यन्त सस्ता, सुलभ तथा उपयोगी साधन है। अपनी उपयोगिता के कारण यह प्रत्येक कक्षा का अभिन्न एवं अनिवार्य अंग बन गया है। इस के बिना किसी कक्षा की कल्पना ही नहीं की जा सकती। अन्य उपकरणों के अभाव में शिक्षण कार्य चल जाता है। परन्तु श्याम–पट का अभाव बहुत खलता है। एक अच्छे अध्यापक के लिए श्याम–पट ऐसा साधन है, जिस के द्वारा वह शिक्षण को अधिकाधिक स्पष्ट, सुग्राह्य तथा प्रभावशाली बना सकता है। हिन्दी–शिक्षण में कई प्रकार के कार्यों के लिए इस का प्रयोग किया जा सकता है, जैसे–

(i) पाठ्य–पुस्तक के पाठ पढ़ाते समय इस पर कठिन शब्द तथा उन के अर्थ लिखे जा सकते हैं।

(ii) छोटी कक्षाओं में विद्यार्थियों को सुलेख (अक्षरों की बनावट) सिखाने के लिए इस पर सुलेख का नमूना प्रस्तुत किया जा सकता है।

(iii) पठित पाठ का सारांश या उस के संकेत–श्यामपट पर लिखे जा सकते हैं।

(iv) मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग श्याम–पट पर लिखा जा सकता है।

(v) रचना–कार्य में कहानी, निबन्ध, पत्र, संवाद आदि लिखवाते समय श्याम–पट पर आवश्यक संकेत तथा उस में प्रयुक्त होने वाले कठिन शब्द लिखे जा सकते है।

(vi) विद्यार्थियों से अक्षर–विन्यास का अभ्यास श्याम–पट पर कवराया जा सकता है।

(vii) व्याकरण फ्याते समय पारिभाषिक शब्दों तथा उदाहरणों को श्याम–पट पर लिखा जा सकता है।

(viii) गृह–कार्य के प्रश्नों को श्याम–पट पर लिखा जा सकता है।

(ix) शिक्षक पाठ से सम्बन्धित कोई रेखा–चित्र, मानचित्र या कार्टून श्याम–पट पर बनाया सकता है।

ध्यान देने योग्य बातें

जिन अध्यापकों की लिखावट सुन्दर और सुडोल नहीं, उन्हें शिक्षण–व्यवसाय में जाने से पहले अपनी इस कमी की ओर ध्यान देकर इसे सुधारना चाहिए। अध्यापक शिक्षा कॉलेजों में भी विद्यार्थी–अध्यापकों के श्याम–पट लेखन की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

श्याम–पट का प्रयोग करते समय अध्यापक को विभिन्न रंगों के चाक का प्रयोग करना चाहिए, परन्तु रंग ऐसे हों जो श्याम–पट पर उभर सकते हों। ऐसे रंगों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, जो श्याम–पट पर स्पष्ट रूप से दिखाई ही न देते हों। इस के

अतिरिक्त सुविधा एवं आवश्यकता के अनुसार अन्य रंगों के चाक भी प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

श्याम–पट का प्रयोग विद्यार्थियों के लिए किया जाता है। इसलिए विद्यार्थियों की सुविधा को भी सम्मुख रखना चाहिए। विद्यार्थी श्याम–पट से इतनी दूरी पर होने चाहिएं, यहाँ से वे श्याम–पट पर लिखे को अच्छी तरह देख और पच सकें। लम्बे कद के विद्यार्थियों को पीछे और छोटे कद के विद्यार्थियों को आगे बिठाना चाहिए। इस के अतिरिक्त श्याम–पट पर कुछ ऐसा नहीं लिखना या बनाना चाहिए जिस से विद्यार्थियों के मन पर कोई गलत प्रभाव पड़े।

2. चार्ट

अन्य विषयों की भांति भाषा–शिक्षा में भी चार्टों का प्रयोग उपयोगी सिद्ध होता है। सूक्ष्म एवं अदृश्य वस्तुओं की स्पष्ट अनुभूति कराने के लिए चार्टों से बहुत सहायता मिलती है। भाषा–शिक्षण में चार्टों का प्रयोग विभिन्न कार्यों के लिए किया जा सकता है।

जैसे–

(i) चार्टों के माध्यम से आरम्भिक कक्षाओं के विद्यार्थियों को वर्णमाला, संयुक्त अक्षरों, मात्राओं आदि का ज्ञान दिया जा सकता है।

(ii) विद्यार्थियों को बोल–चाल की शिक्षा देते समय किसी चार्ट को आधार बनाया जा सकता है।

(iii) पाठ्य–पुस्तक के विभिन्न पाठों से सम्बन्धित उपयोगी चार्ट बना कर उन्हें विद्यार्थियों के लिए सुबोध एवं सुग्राह्य बनाया जा सकता है।

(iv) प्रयोगात्मक व्याकरण के अभ्यास के लिए आवश्यक चार्ट बनाये जा सकते हैं।

ध्यान देने योग्य बातें– भाषा–शिक्षक को शिक्षण–कार्य की आवश्यकताओं के अनुसार विद्यार्थियों की सुविधाओं को सम्मुख रखते हुए विभिन्न प्रकार के चार्ट तैयार करने चाहिएं। पाठ की जैसी मांग हो, उसी प्रकार का चार्ट तैयार किया जाना चाहिए। चार्ट जटिल नहीं होना चाहिए और न ही उस में कठिन भाषा का प्रयोग होना चाहिए। चार्ट जितना सरल होगा, उतना अधिक वह उपयोगी एवं प्रभावशाली होगा। चार्टों में रंगों का प्रयोग अवश्य होना चाहिए परन्तु ये रंग सुरुचिपूर्ण, उचित तथा प्रभावशाली होने चाहिएं। अध्यापक–शिक्षा कॉलेजों में विद्यार्थी–अध्यापकों को चार्ट बनाने का उचित प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए ताकि अपने शिक्षण–कार्य में वे विभिन्न प्रकार के चार्ट तैयार कर सकें।

3. मानचित्र

भाषा–शिक्षकों को कई ऐसे पाठ पढ़ाने होते हैं, जिन का सम्बन्ध इतिहास, भूगोल और विज्ञान के साथ होता है। ऐसे पाठ पढ़ाते समय उन्हें सम्बन्धित मानचित्रें का प्रयोग करना चाहिए। मान लीजिए कि किसी कक्षा के विद्यार्थियों को 'अशोक महान्'

का पाठ फ्याना है तो उसके राज्य विस्तार तथा कलिंगा के युद्ध को दर्शाने के लिए मान–चित्र का भली–भांति प्रयोग किया जा सकता है। सम्बन्धित मान–चित्रें के प्रयोग से विद्यार्थियों को फ्याये जा रहे पाठ की ऐतिहासिक एवं भौगोलिक स्थिति का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है, जो उन्हें पाठ को हृदयंगम करने में सहायता प्रदान करता है। मान–चित्रें की सहायता से भाषा–शिक्षण का इतिहास, भूगोल एवं विज्ञान के साथ समवाय स्थापित करने में भी सहायता मिलती है।

4. चित्र

शिक्षण के दृश्य साधनों में चित्रें का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। चित्रें के प्रति बच्चे स्वाभाविक रूप से आकर्षित होते हैं। छोटा बच्चा पुस्तक फ्यना जाने या न जाने परन्तु वह तस्वीरों के प्रति अवश्य आकर्षित होता है। इसी प्रकार बड़े भी विभिन्न साप्ताहिक एवं मासिक पत्रिकाओं की पाठ्य–सामग्री को फ्य पायें या न फ्य पायें, परन्तु उन की तस्वीरें अवश्य देखना चाहते हैं। वस्तुते इस की प्रभावोत्पादकता के कारण ही इन्हें पाठ्य–पुस्तकों में उचित स्थान दिया जाता है। भाषा–शिक्षक चित्रें को विभिन्न प्रकार से प्रयोग कर सकता है, जैसे–

(i) प्रारम्भिक कक्षाओं में वर्णमाला चित्रें के माध्यम से फ्याई जाती है। छोटे छोटे बच्चे पहले रंग–बिरंगे चित्रें के प्रति आकर्षित होते हैं और फिर उन्हीं के द्वारा विभिन्न वर्गों का ज्ञान प्राप्त करते हैं–जैसे अ–अनार (अनार का चित्र), आ–आम (आम का चित्र) आदि।

(ii) बच्चों को बातचीत सिखाने के लिए भी विभिन्न प्रकार के चित्रें को आधार बनाया जा सकता है।

(iii) उच्चारण सिखाते समय भी विभिन्न उच्चारण–स्थलों की स्थिति को चित्र के माध्यम से दर्शाया जा सकता है।

(iv) चित्रें के द्वारा लेखन (रचना) का अभ्यास करवाया जा सकता है, जैसे–लेखनार्थ विषय से सम्बन्धित विभिन्न चित्रें को एकत्रित करके उन को यदि क्रमबद्ध कर लिया जाए और फिर प्रश्नोत्तर विधि द्वारा एक चित्र के आधार पर विषय को निर्मित एवं विकसित किया जाए तो विद्यार्थियों को रचना कार्य करने में सहायता एवं प्रेरणा मिलती है। इस तरह विद्यार्थी विषय को क्रमबद्ध गठित करना भी सीख जाते हैं।

(v) चित्रें द्वारा जीवन की विविध झांकियों को मूर्तरूप से प्रस्तुत करने में सहायता मिलती है, जैसे अलग–अलग प्रदेशों एवं देशों की वेश–भूषा, रीति रिवाज, मेले–त्योहार, भवन–निर्माण कला आदि।

(vi) उच्च कक्षाओं में कविता, कहानी, नाटक, निबन्ध आदि साहित्य की विभिन्न विधायें फ्याते समय भी चित्रें से पर्याप्त सहायता मिलती है। इन की पृष्ठ भूमि को चित्रें

द्वारा दर्शाया जा सकता है। चित्रें के माध्यम से विद्यार्थियों में सौन्दर्यानुभूति जागृत की जा सकती है, जो उन्हें कविता के रसास्वादन में सहायक सिद्ध होती है।

(vii) शिक्षा के लिए उपयोगी वातावरण के निर्माण में चित्रें से बहुत सहायता मिलती है। यदि किसी स्कूल में हिन्दी–कक्षा की व्यवस्था है और सभी कक्षाओं के विद्यार्थी वहां पढ़ने के लिए आते हैं तो वहां विभिन्न साहित्यकारों के चित्र लगा कर शिक्षण के लिए उपयोगी वातावरण बनाया जा सकता है।

इसी प्रकार प्रत्येक स्तर पर भाषा–शिक्षण के कार्यों को चित्रें के साथ सम्बन्धित किया जा सकता है। अध्यापकों को चित्रें के एकत्रीकरण में हमेशा सुचेत रहना चाहिए। विद्यार्थियों की सहायता से विविध पत्र–पत्रिकाओं से कई चित्र एकत्रित कर के उन के एलबम बनाये जा सकते हैं और आवश्यकतानुसार उन्हें शिक्षण में प्रयोग किया जा सकता है। ऐसे चित्रें का चुनाव करना चाहिए जो विषय के अनुकूल हों और जिन में रंगों का उचित एवं आकर्षक प्रयोग किया गया हो।

5. मॉडल

मॉडल के माध्यम से सूक्ष्म एवं अदृश्य वस्तुओं को स्थूल एवं दृश्य रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। ताजमहल का पाठ पढ़ाने के लिए विद्यार्थियों को वास्तविक रूप से ताजमहल नहीं दिखाया जा सकता, परन्तु ताजमहल के मॉडल द्वारा उन्हें उस की दृश्यमान अनुभूति कराई जा सकती है। इस प्रकार विभिन्न विषयों से सम्बन्धित मॉडल बनाये जा सकते हैं। मॉडल बनाना अपेक्षाकृत कठिन काम है और बने–बनाये मॉडल खरीदने में खर्च अधिक होता है। इसलिए मॉडलों का प्रयोग कम किया जाता है। यदि अध्यापक स्वयं मॉडल बना सके या कम खर्च पर मॉडल उपलब्ध हो सके तो शिक्षण–कार्य में इन का अत्यन्त उपयोगी प्रयोग किया जा सकता है, क्योंकि इन की सहायता से विद्यार्थियों को वास्तविक पदार्थ की वास्तविक अनुभूति प्रदान की जा सकती है।

6. चित्र–दर्शक चित्र–दर्शक द्वारा विभिन्न विषयों से सम्बन्धित स्लाईडें ;सपकमेद्ध दिखा कर उन्हें अच्छी तरह समझाया जा सकता है। इन्हें दिखाने के लिए कक्षा में सफेदी की गई दीवार का प्रयोग किया जा सकता है या दीवार पर सफेद पर्दा लगाया जा सकता है। कोई भी चित्र दिखा कर उस की कुछ मौखिक व्याख्या होनी चाहिए और प्रश्नोत्तर विधि से उस का विद्यार्थियों को ज्ञान कराना चाहिए।

7. चित्र विस्तारक यन्त्र यह एक ऐसा यन्त्र है, जिस की सहायता से छोटे आकार की वस्तु को बड़े आकार में दिखाया जा सकता है पाठ्य–पुस्तक में प्रकाशित कई चित्र स्पष्ट नहीं होते। उन्हें चित्र–विस्तारक–यन्त्र की सहायता से बड़े आकार में दिखाया जा सकता है। किसी पुरानी पाण्डुलिपि को इस की सहायता से विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत किया जा सकता है।

श्रव्य उपकरण :

8. रेडियो

रेडियो केवल मनोरंजन का ही साधन नहीं बल्कि शिक्षा का भी महत्त्वपूर्ण साधन है, विशेषतये भाषा–शिक्षण की दृष्टि से इस का बहुत ज्यादा महत्त्व है, जैसे–

(i) रेडियो के माध्यम से उच्चारित भाषा का शुद्ध रूप हमारे सामने प्रस्तुत होता है। इस के द्वारा विद्यार्थी भाषा का शुद्ध प्रयोग एवं शुद्ध उच्चारण सीखते हैं।

(ii) रेडियो पर अच्छे–अच्छे वक्ताओं के भाषण प्रसारित किये जाते हैं और इन भाषणों के माध्यम से विद्यार्थियों को अच्छे–अच्छे विद्वानों एवं लेखकों से सम्पर्क स्थापित होता है। इस से विद्यार्थियों के ज्ञान में वृद्धि होती है तथा नये विचार ग्रहण करने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

(iii) रेडियो पर विभिन्न साहित्यकारों तथा उन की कृतियों का परिचय प्रसारित किया जाता है, जिस से विद्यार्थियों के साहित्यक ज्ञान में वृद्धि होती है। नवीन साहित्यकारों तथा उन की साहित्यक गतिविधियों का परिचय प्राप्त करने में भी आकाशवाणी के प्रसारण महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

(iv) आकाशवाणी से जब कवि–दरबार प्रसारित होते हैं तो विद्यार्थियों को कविताओं के रसास्वादन का अवसर प्राप्त होता है। इस के अतिरिक्त उन्हें कविता–पाठ की विभिन्न शैलियों का भी ज्ञान होता है और अभ्यास द्वारा वे इन शैलियों में प्रवीणता भी प्राप्त कर लेते हैं।

(v) आकाशवाणी द्वारा विभिन्न–नाटक, कहानियां, वाद–विवाद, चुटकले आदि प्रसारित होते रहते हैं, जिन से विद्यार्थियों को मनोरंजन के साथ–साथ साहित्य की विभिन्न विधाओं तथा अभिव्यक्ति की विभिन्न शैलियों का भी ज्ञान होता है।

(vi) आकाशवाणी के प्रसारणों से विद्यार्थियों को नये शब्द और मुहावरे सीखने का अवसर प्राप्त होता है, जिस से उस की शब्द–शक्ति में विकास होता है।

(vii) आकाशवाणी का प्रसारण एक ही समय देश के कोने–कोने तक पहुंच सकता है। इस प्रकार सभी विद्यार्थी विख्यात विद्वानों तथा शिक्षकों के शिक्षण का लाभ उठा सकते हैं।

(viii) आकाशवाणी के प्रसारण का समय निश्चित होता है। इस से विद्यार्थियों को ध्यानपूर्वक सुनने का प्रयास करना होता है। यह प्रयास धीरे–धीरे आदत में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार रेडियो–प्रसारण ध्यानपूर्वक सुनने की प्रवृत्ति को विकसित करता है।

रेडियों की उपर्युक्त उपयोगिताएं प्रसारित कार्यक्रमों पर निर्भर करती हैं। यदि प्रसारण–कार्यक्रम रोचक, शिक्षा–प्रद तथा प्रेरक होंगे तभी तो विद्यार्थी उस से वांछित लाभ उठा सकेंगे, वरना वे स्कूल के नियमित कार्यक्रम में भी बाधक सिद्ध होंगे। वैसे तो रेडियो से विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम प्रसारित होते रहते हैं परन्तु विद्यार्थियों के लिए

उपयोगी कार्यक्रम हैं–'स्कूल ब्रॉडकास्ट' तथा बच्चों के लिए कार्यक्रम। इन दोनों कार्यक्रमों की रचना एवं तैयारी में आकाशवाणी के अधिकारियों को सावधानी से काम लेना चाहिए। 'स्कूल–ब्रॉडकास्ट' की तैयारी के लिए अनुभवी अध्यापकों से परामर्श एवं सहयोग प्राप्त करना चाहिए। यह विद्यार्थियों के पाठ्य–क्रम पर आधारित हों तो उस से विद्यार्थियों को अधिक लाभ हो सकता है।

अच्छे कार्यक्रमों से भी पूरा–पूरा लाभ उठाने के लिए निम्नलिखितकुछ बातों की ओर ध्यान देना आवश्यक है–

(i) स्कूल के टाईम–टेबल में 'स्कूल–ब्रॉडकास्ट' के लिए समय निश्चित किया जाना चाहिए। यादा से यादा बच्चों को इन कार्यक्रमों से लाभान्वित करने के लिए ये कार्यक्रम स्कूल समय के दौरान प्रसारित होना चाहिए और उस के लिए टाईम–टेबल में आवश्यक सुविधा होनी चाहिए।

(ii) रेडियो के कार्यक्रम के लिए विद्यार्थियों को तैयार करना चाहिए। यदि अध्यापक को कार्यक्रम पहले से ज्ञात हो तो वे आवश्यक पृष्ठ–भूमि का निर्माण कर के विद्यार्थियों को उसे सुनने के लिए तैयार कर सकते हैं।

(iii) प्रसारण–यन्त्र द्वारा आवाज सभी कक्षाओं में पहुंचनी चाहिए ताकि सभी विद्यार्थी अपनी–अपनी कक्षा में बैठ कर कार्यक्रम सुन सकें। इस से वांछित अनुशासन बना रहेगा यदि विद्यार्थियों को एक स्थान पर एकत्रित करके रेडियो सुनवाना हो तो उनके बैठने तथा रेडियो रखने की पहले से उचित व्यवस्था करनी चाहिए।

(iv) कार्यक्रम समाप्त होने के पश्चात् उस के कठिन स्थलों की आवश्यकतानुसार व्याख्या करके प्रश्नोत्तर माध्यम से इस बात को निश्चित बनाना चाहिए कि कार्यक्रम विद्यार्थियों को अच्छी तरह समझ आ गया है।

(v) प्रसारित कार्यक्रम के आधार पर बच्चों के कुछ लेखन–कार्य भी करवाना चाहिए।

9. ग्रामोफोन

ग्रामोफोन का प्रचलन काफी पुराना है। यद्यपि रेडियो और दूरदर्शन के कारण बड़े–बड़े शहरों में इस का प्रयोग नहीं के बराबर हो गया है परन्तु छोटे–छोटे गांवों में अब भी इस का प्रयोग होता है। प्राये इस का प्रयोग मनोरंजन के लिए किया जाता है, परन्तु इसे शिक्षण–कार्य में भी कुशलता पूर्वक प्रयुक्त किया जा सकता है। कहानियों, कविताओं, गीतों, संवादों आदि रिकार्ड करके ग्रामोफोन द्वारा विद्यार्थियों को सुनाये जा सकते हैं। इस से विद्यार्थियों को सुन कर समझने, याद करने तथा शुद्ध–उच्चारण करने का अभ्यास होता है।

10. लिंग्वाफोन

लिंग्वाफोन विशेष रूप से भाषा–शिक्षण के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इस के द्वारा विद्यार्थियों को उच्चारण, स्वराघात, लय आदि की शिक्षा दी जाती है। इसके रिकार्डों को बार–बार सुन कर विद्यार्थी अनुकरण द्वारा शुद्ध उच्चारण करने लगते हैं। उन्हें भाषा में

स्वराघात के महत्त्व तथा उसके उचित प्रयोग का ज्ञान हो जाता है और वे उचित लय के साथ कविता–पाठ भी करने लगते हैं। भाषा के शुद्ध प्रयोग की शिक्षा देने के लिए 'लिंग्वाफोन' एक उपयोगी साधन है। प्रत्येक स्कूल में हिन्दी शिक्षण के लिए इस की व्यवस्था होनी चाहिए।

11. टेप–रिकार्डर

टेप–रिकार्डर के प्रयोग में वे सभी लाभ निहित हैं, जो रेडियो एवं लिंग्वाफोन के प्रयोग से प्राप्त होते हैं। उच्चारण, वाचन, बोल–चाल, अभिव्यक्ति की विभिन्न शैलियों, साहित्यिक गतिविधियों तथा विभिन्न विषयों का ज्ञान प्रदान करने में टेप–रिकार्डर की उपयोगिता भी अन्य साधनों से कम नहीं, परन्तु इस साधन में एक ऐसी विशेषता है जो अन्य साधनों में नहीं मिलती। इसके द्वारा विद्यार्थियों की ध्वनियों का टेप करके उन्हें उन की अशुद्धियों एवं त्रुटियों के प्रति सचेत किया जा सकता है।

विद्यार्थी अनुकरण से सीखते अवश्य हैं परन्तु कई बार उन का अनुकरण दोष–पूर्ण एवं भ्रमपूर्ण होता है। टेप–रिकार्डर की सहायता से उन के दोष एवं भ्रम को दूर किया जा सकता है। जब उन की अपनी ध्वनि रिकार्ड हो जाती है और उन्हें अपनी ध्वनि सुनाई जाती है तो उन्हें 'अनुकरण' एवं 'वास्तविक' में तुलना करने का अवसर मिलता है। इस से उन्हें ज्ञात होता है कि उनके अनुकरण में क्या त्रुटि है और वे उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार टेप–रिकार्डर भाषा के विभिन्न तत्वों के शिक्षण तथा उन में प्रवीणता प्रदान करने में अपेक्षाकृत अधिक सहायक सिद्ध होता है।

दृश्य–श्रव्य उपकरण :

12. चलचित्र

चल–चित्र एक सशक्त माध्यम है, जिस के व्यापक प्रभाव से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता। चल–चित्र वस्तुते एक उद्योग बन चुका है, जिस का मुख्य उद्देश्य पैसा कमाना है। पैसा कमाने की लालसा में प्राये निम्न स्तर की मारधाड़ एवं सस्ते रोमांस से भरपूर फ़िल्में बनाई जाती हैं जो जन–साधारण की निम्न रुचियों का पोषण करती हैं। चलचित्र के इस व्यावसायिक रूप को देख कर यह अनुमान नहीं लगा लेना चाहिए कि इन का शिक्षा–क्षेत्र में कोई उपयोग नहीं। आवश्यकता इस बात की है कि अच्छी फ़िल्मों के निर्माण से इस सशक्त माध्यम को शिक्षा–क्षेत्र के लिए ड्डयादा उपयोगी बनाया जाए। अच्छी फ़िल्मों से जहाँ ज्ञानवृद्धि, चरित्र–निर्माण तथा भाव–परिष्कार में सहायता मिलती है वहां भाषा–विकास की दृष्टि में भी कई प्रकार के लाभ होते हैं, जैसे–

(i) संभाषण सुनने और समझने का अभ्यास होता है।

(ii) उच्चारण को शुद्ध करने में सहायता मिलती है। सिने–पर्दे पर अभिनेताओं के शुद्ध उच्चारण से प्रभावित हो कर विद्यार्थी भी उन का अनुकरण करते हुए शुद्ध उच्चारण करने लगते हैं।

(iii) शब्दावली में वृद्धि होती है।

(iv) अभिव्यक्ति की विभिन्न शैलियों का ज्ञान होता है, आदि। वस्तुते चलचित्र एक ऐसा साधन है जो एक ही समय में विद्यार्थियों के नेत्रों, कानों तथा भावों को प्रभावित करता है। इस की छाप मत–मस्तिष्क में गहरी अंकित हो जाती है। अतः इस का शिक्षण–क्षेत्र में अवश्य प्रयोग होना चाहिए।

इन के अतिरिक्त सूचना एवं शिक्षा मंत्रालय द्वारा निर्मित अच्छी दस्तावेजी फ़िल्में समाचार–रीलें (News Reels) भी विद्यार्थियों को दिखाई जानी चाहिएं। जिन स्कूलों के पास प्रोजैक्टर हैं, उन्हें कम से कम पंद्रह दिनों में एक बार फ़िल्म अवश्य दिखानी चाहिए। फिल्म दिखाते समय उन्हें ऐसे निकटवर्ती स्कूलों को भी आमन्त्रित करना चाहिए, जो आर्थिक अभाव के कारण प्रोजैक्टर नहीं खरीद सकते। फिल्म दिखाने के पश्चात् उस पर विद्यार्थियों के साथ उचित विचार–विमर्श होना चाहिए ताकि उन के मन में किसी प्रकार का भ्रम न रहे और उन के ज्ञान तथा भाषा–विकास में वांछित वृद्धि हो।

13. दूरदर्शन

दूरदर्शन की वही उपयोगिता है, जो चल–चित्र की है। इसे शिक्षण के क्षेत्र में अधिक उपयोगी ढंग से प्रयुक्त किया जा सकता है। दूरदर्शन के लिए बालोपयोगी फिल्में बनाई जानी चाहिए। भाषा के विभिन्न तत्त्वों का ज्ञान देने के लिए अच्छे–अच्छे अध्यापकों द्वारा दूर–दर्शन पर शिक्षण–कार्य की व्यवस्था होनी चाहिए। बच्चों के लिए कार्यक्रम तैयार करते समय विद्यार्थियों को रुचियों तथा आवश्यकताओं की ओर ध्यान देना चाहिए और इस के लिए बाल–मनोविज्ञानिकों तथा शिक्षकों का सहयोग अवश्य प्राप्त करना चाहिए यदि दूरदर्शन पर 'विद्यार्थियों के कार्यक्रम' की विशेष व्यवस्था की जा सके तो इस से विद्यार्थी अधिक लाभन्वित हो सकते हैं।

विद्यार्थियों का यह कार्यक्रम स्कूल समय के दौरान होना चाहिए और इस के लिए टाईम–टेबल में आवश्यक व्यवस्था होनी चाहिए। दूर–दर्शन के उचित प्रयोग से विद्यार्थियों में ज्ञान–वृद्धि की जा सकती है, उनके उच्चारण को शुद्ध किया जा सकता है। उनके शब्द–ज्ञान को विकसित किया जा सकता है। उन्हें अभिव्यक्ति की विभिन्न शैलियों का ज्ञान दिया जा सकता है तथा उन में साहित्यिक एवं कलात्मक रुचियों को विकसित किया जा सकता है।

2.2.7 श्रव्य–दृश्य साधनों का उचित प्रयोग एवं प्रयोग में सावधानियाँ

श्रव्य–दृश्य–साधनों का यदि प्रयोग न किया जाए तो उन्हें एकत्रित कर लेने का कोई लाभ नहीं। प्रायः देखा गया है कि स्कूलों में प्रोजैक्टर तो होता है। परन्तु उस का वर्षों तक कोई प्रयोग नहीं किया जाता और कुछ समय के पश्चात् उसे पुरानी बेकार चीजों के साथ बेच दिया जाता है। स्कूल में चार्ट, तस्वीरें और नक्शे तो होते हैं परन्तु उन्हें अल्मारियों में बन्द रखा जाता है और कुछ समय के पश्चात् उन्हें दीमक खा जाती है। स्कूल में रेडियो तो होता है परन्तु शिक्षण में उस के प्रयोग की आवश्यकता नहीं

समझी जाती। परिणामस्वरूप वह मुख्याध्यापक के कमरे की सजावट बन कर रह जाता है।

ये उपकरण दिखावे और सजावट के लिए नहीं होते, बल्कि प्रयोग के लिए होते हैं। वस्तुते श्रव्य–दृश्य उपकरणों का प्रयोग न करना या ग़लत प्रयोग करना शिक्षण–कार्य को नीरस, शुष्क और पंगु बनाना है। इन का उचित प्रयोग होना चाहिए और इस के लिए निम्नलिखित कुछ सुझाव उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं–

(i) श्रव्य–दृश्य–उपकरण साधन हैं, साध्य नहीं। ये साधन भी सहायक हैं, मुख्य नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि इन्हें शिक्षण–कार्य में 'सहायक साधनों' के रूप में प्रयुक्त किया जाना चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक पाठ के लिए किसी न किसी उपकरण की व्यवस्था अवश्य की जाए। अतः इन का प्रयोग वहां होना चाहिए जहां आवश्यक हो।

(ii) क्योंकि इन उपकरणों को 'सहायक–साधनों' के रूप में प्रयुक्त करना है, इस लिए इन की संख्या आवश्यकता से अधिक नहीं होनी चाहिए। प्राये देखा गया है कि विद्यार्थी–अध्यापक शिक्षण की परीक्षा देते समय ऐसे बहुत से उपकरण एकत्रित कर लेते हैं। महत्त्व उपकरणों की संख्या का नहीं होता, बल्कि उनके उचित और वांछित प्रयोग का होता है।

(iii) श्रव्य–दृश्य उपकरणों का उचित प्रयोग तभी हो सकता है, जब उन का चुनाव उचित हो। अध्यापक को इन का चुनाव करते समय सावधानी से काम लेना चाहिए। गलत उपकरणों का चुनाव समूचे शिक्षण को प्रभावहीन और हास्यास्पद बना देता है। चुनाव करते समय इन बातों की ओर ध्यान देना चाहिऐ–

(क) श्रव्य–दृश्य उपकरण पाठ की आवश्यकताओं के अनुकूल हों। इन से पाठ को सरल, स्पष्ट, प्रभावोत्पादक एवं रोचक बनाने में सहायता मिलती है।

(ख) ये उपकरण विद्यार्थियों की रुचियों, सौन्दर्य बोध तथा मानसिक स्तर की आवश्यकताओं के अनुकूल हों।

(ग) इन का आकार इतना बड़ा न हो कि उन्हें आसानी के साथ कक्षा में ले जाया न सके। आकार के साथ–साथ भार की अनुकूलता पर भी ध्यान देना चाहिए। उपकरण का आकार एवं भार इतना होना चाहिए कि उसे आसानी के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर ले जाया जा सके और उस का सुगमता से प्रयोग किया जा सके।

(iv) प्रयोग करने से पहले अध्यापक को सहायक–सामग्री तैयार कर लेनी चाहिए। यदि उसे कुछ चार्टों, मान–चित्रें या चित्रें का शिक्षण में प्रयोग करना है तो वे पहले से तैयार होने चाहिएं। यदि वे किसी अलमारी में रखे हों तो उन्हें अल्मारी से बाहर निकाल कर रखना चाहिए। कक्षा में आ कर किसी विद्यार्थी को कोई उपकरण लाने के लिए दौड़ाना बिल्कुल अनुचित है।

(v) शिक्षण के दौरान सहायक उपकरण निश्चित स्थान पर तथा उचित समय पर प्रयुक्त होने चाहिएं। पाठ–योजना तैयार करते समय अध्यापक को इस बात का निर्णय कर लेना चाहिए कि उसे कब, पाठ के किस स्थल पर, कौन सा उपकरण प्रयुक्त करना है। यदि उपकरण उचित समय और स्थल पर प्रयुक्त किया जाये तो उस से वांछित लक्ष्य प्राप्त हो सकते हैं।

(vi) वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि अध्यापक को उन लक्ष्यों का पहले से ज्ञान हो। पाठ–योजना तैयार करते समय अध्यापक को निश्चित कर लेना चाहिए कि उस ने किस सहायक उपकरण से कौन से उद्देश्य पूरे करने हैं और उन उद्देश्यों की प्राप्ति में वह उपकरण कहां तक सहायक हो सकता है।

(vii) कक्षा में एक समय में एक से अधिक उपकरण नहीं दिखाने चाहिए। जितने उपकरणों का प्रयोग करना हो, उन का क्रम पहले से निर्धारित कर लेना चाहिए और उसी क्रम के अनुसार वे बारी–बारी दिखाने चाहिएं। सभी उपकरण एक बार दिखाने से या उन्हें क्रमवार न दिखाने से विद्यार्थियों में कई प्रकार के भ्रम उत्पन्न हो सकते हैं।

(viii) सहायक–उपकरणों का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए कि सभी विद्यार्थी उन का लाभ उठा सकें। उपकरण एक–एक विद्यार्थी के पास नहीं ले जाना चाहिए, बल्कि उस का इस प्रकार प्रयोग करना चाहिए कि सभी विद्यार्थी एक साथ उसे देख सकें। इस के लिए आवश्यक है कि उपकरण को कक्षा में किसी उचित स्थान पर लटकाया जाये या रखा जाये ताकि सभी विद्यार्थी अपने स्थान पर बैठे हुए उसे देख सकें।

(ix) विद्यार्थियों को उन की कक्षा के स्तर के अनुकूल ऐसी वस्तुओं के चित्र चार्ट, मॉडल आदि दिखाने चाहिएं जिन्हें उन को वास्तविक जीवन में देखने का बहुत कम अवसर मिलता है।

(x) प्रयोग करते समय तथा प्रयोग करने के पश्चात् श्रव्य–दृश्य उपकरणों को सम्भाल कर रखना चाहिए। कई उपकरण तो बहुत महंगे होते हैं, जैसे–प्रोजैक्ट, स्लाईड्ज, फिल्म–स्ट्रिप्स, रेडियो, टेलीविजन, टेप–रिकार्डर, लिंग्वाफोन, विभिन्न प्रकार के मानचित्र आदि । इन की उचित देख–भाल होनी चाहिए और बड़ी सावधानी के साथ इन का प्रयोग होना चाहिए। वस्तुते दैनिक प्रयोग के लिए सस्ते उपकरणों का प्रयोग करना अधिक उचित है।

(xi) भाषा शिक्षण में प्रयुक्त होने वाले दृश्य–श्रव्य उपकरणों की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। रेडियो, दूरदर्शन प्रसारण के लिए इनके रखने की तथा विद्यार्थियों के बैठने की व्यवस्था पहले से ही कर लेनी चाहिए। विद्युत प्रबन्ध ठीक होना चाहिए।

(xii) रेडियो, दूरदर्शन, चलचित्र आदि उपकरणों के प्रयोग की विद्यालय की समय सारणी में व्यवस्था होनी चाहिए।

(xiii) जहां तक हो सके विद्यार्थियों के सहयोग से आवश्यकतानुसार नए–नए उपकरण सस्ती व प्रयोग में आने वाली वस्तुएं जैसे खाली डिब्बे, कपड़ों व काग़जों की कतरन आदि से बनाए जाने चाहिएं इससे उनमें उत्साह व प्रेरणा जागृत होगी।

1. टेप रिकार्डर पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
.....
.....

2. हिन्दी शिक्षण में मानचित्र का महत्व स्पष्ट कीजिए।
.....
.....

2.2.8 सारांश

इस अध्याय में हमने दृश्य श्रव्य साधनों के बारे में पढ़ा। उपर्युक्त सुझावों को कार्यन्वित करने से श्रव्य–दृश्य साधनों का उचित प्रयोग सम्भव हो सकेगा और उन के उचित प्रयोग से ही शिक्षण को रोचक, प्रभावशाली तथा उपयोगी बनाया जा सकता है। प्राइमरी कक्षाओं में दृश्य–श्रव्य साधनों का अच्छा प्रभाव दिखायी पड़ता है बड़ी कक्षाओं में कक्षा के स्तर के अनुसार मानक साधनों का ही प्रयोग करना चाहिए।

2.2.9 स्वयं जांच अभ्यास

खाली स्थान भरो

1. ग्रामोफोन.....साधन का प्रकार है।
2. चलचित्र.....साधन का प्रकार है।

उत्तर : 1. श्रव्य 2. दृश्य–श्रव्य

2.2.10 अभ्यासात्मक प्रश्न

प्रश्न.1 दृश्य–श्रव्य साधन किसे कहते हैं? परिभाषा दीजिए।

प्रश्न.2 दृश्य श्रव्य साधन कितने प्रकार के होते हैं? वर्णन करें।

प्रश्न.3 "दृश्य–श्रव्य साधन शिक्षण के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हैं।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

प्रश्न.4 "सहायक सामग्री छात्र और अध्यापक दोनों की सहायता करती है।" इस कथन की व्याख्या करते हुए सहायक सामग्री की भाषा शिक्षण में महत्ता पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न.5 दृश्य–श्रव्य साधनों का प्रयोग करते समय अध्यापक को किन–किन बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

प्रश्न.6 संक्षिप्त नोट लिखें–

1. ग्रामोफोन
2. श्यामपट्ट
3. टेलीविजन
4. रेडियो

2.2.11 सहायक पुस्तकें

1. आधुनिक हिन्दी शिक्षण– डा. योगेश कूमार–ए.पी.एच. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, नई दिल्ली
2. हिन्दी शिक्षण–डा. उदयवीर सक्सैना–विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
3. नूतन हिन्दी शिक्षण–डा. के. आय. सत्तिगेरी–विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
4. हिन्दी शिक्षण–ज्योति खन्ना – धनपत राय एण्ड कं. प्रा. लि., दिल्ली
5. हिन्दी शिक्षण– सुरेश नायक – टवेन्टी फस्ट सैंचुरी पब्लिकेशन्ज, पटियाला
6. हिन्दी शिक्षण– भाटिया–शर्मा– टण्डन पब्लिकेशन, लुधियाना

Updated on February, 2026

बी.एड.–भाग–प्रथम | पेपर–XI और XII

(सैमेस्टर–दूसरा) | **Pedagogy of School Subject (Part-II)**

पाठ नं–2.3 | लेखिका सहायक प्रा. मनदीप कौर

Converted into SLM : Dr. Sharmila

पाठ योजना : महत्व रूप रेखा एवं प्रकार पाठ्यक्रम एवं पाठ्य सामग्री का निर्माण एवं विश्लेषण

2.3.1 उद्देश्य

2.3.2 भूमिका

2.3.3 पाठ योजना की आवश्यकता एवं महत्व

2.3.4 पाठ योजना की रूपरेखा

2.3.5 पाठ–योजना के प्रकार

2.3.6 पाठ्यक्रम

  2.3.6.1 पाठ्यक्रम एवं पाठ्य सामग्री का निर्माण

  2.3.6.2 पाठ्यक्रम विश्लेषण

2.3.7 सारांश

2.3.8 स्वयं जांच अभ्यास

2.3.9 अभ्यासात्मक प्रश्न

2.3.10 सहायक पुस्तकें

2.3.1 उद्देश्य

(i) पाठ योजना को परिभाषित कर सकेंगे।

(ii) पाठ योजना की आवश्यकता को बता पाएंगे।

(iii) पाठ योजना की रूपरेखा तैयार कर सकेंगे।

(iv) पाठ्यक्रम को परिभाषित कर सकेंगे।

(v) पाठ्यक्रम एवं पाठ्यसामग्री का निर्माण कर सकेंगे।

(vi) पाठ्यक्रम का विश्लेषण कर सकेंगे।

2.3.2 भूमिका

जीवन में किया जाने वाला चाहे कोई भी कार्य हो, उसमें सफलता तभी मिलती है, जब वह कार्य योजनाबद्ध तरीके से किया गया हो। योजनाबद्ध कार्य एक निश्चित अवधि में समाप्त होता है, जिससे निश्चित उद्देश्यों की भी प्राप्ति संभव बन जाती है। प्रत्येक कार्य को करने से पहले योजना अति आवश्यक होती है।

कार्य चाहे बड़े से बड़ा हो या फिर छोटे से छोटा, वह सफल तभी होता है, जब उसे एक सफल योजना का आधार मिले। कार्यालय हो, सरकार हो, शिक्षा क्षेत्र हो, व्यापारिक क्रियाकलाप हो या फिर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कार्य उनके लिए योजना बनाई जाती है। उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं और फिर साधन जुटा कर योजना को क्रियान्वित किया जाता है। अध्यापक के क्षेत्र में शिक्षण के व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक दोनों पक्षों को महत्व दिया जाता है, जिससे कुशल शिक्षकों को तैयार करने में सफलता मिलती है।

2.3.3 पाठ योजना की आवश्यकता एवं महत्व :

शिक्षण प्रक्रिया की सफलता दैनिक पाठ योजना पर निर्भर करती है। इसके महत्व को निम्न रूप से आंका गया है–

1. अध्यापक व विद्यार्थी दोनों के समक्ष भाषा सम्बन्धी उद्देश्यों के स्पष्टीकरण के लिए पाठ योजना एक प्रमुख साधन है। इससे शिक्षण उद्देश्यपूर्ण बनता है।

2. शिक्षक यदि नियमित रूप से पाठ योजना बनाए तो वह विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम में निर्धारित विषय का समुचित ज्ञान प्रदान कर सकता है। इससे विषय सामग्री का कोई

भी पहलू अछूता नहीं रहता। विद्यार्थियों को भी यह ज्ञात होता है कि उन्होंने विषय का कितना ज्ञान प्राप्त किया है।

3. नियमित पाठ्य योजना से समय का सदुपयोग होता है तथा पाठ्यक्रम निश्चित अवधि में समाप्त हो जाता है। अध्यापक अपना व विद्यार्थियों का समय नष्ट नहीं करता।

4. अध्यापक भाषा शिक्षण विधियाँ पूर्व निर्धारित कर लेता है। वह दैनिक पाठ योजना बनाते हुए वह विचार कर लेता है कि उसने भाषा व साहित्य के किस विषय को किस प्रकार पढ़ाना है।

5. दृश्य–श्रव्य साधन व अन्य सहायक शिक्षण उपकरणों की सहायता किस प्रकार ली जाएगी, इस पर अध्यापक पाठ योजना निर्माण के समय विचार कर लेता है तथा उनका प्रबन्ध कर लेता है।

6. अध्यापक पाठ योजना बनाते हुए वह भी सोच लेता है कि पूर्व ज्ञान परीक्षण किस प्रकार किया जाए ताकि विद्यार्थी प्रस्तुत पाठ की ओर प्रेरित हो।

7. बिना योजना बनाए जब अध्यापक शिक्षा प्रदान करता है तो इससे कई सूक्ष्म बातों का स्पष्टीकरण छूट जाता है। शिक्षण रोचक तभी बन सकता है यदि पाठ योजनाबद्ध हो।

8. कक्षा में विद्यार्थियों को सक्रिय एवं जागरूक रखने के लिए पाठ कर सुनियोजित होना आवश्यक है। शिक्षण को सहज वह आकर्षक बनाने के लिए अध्यापक कई प्रकार की छात्र क्रियाएं व खेल विधियों को अपनाता है। ऐसा वह कक्षा में आने से पूर्व पाठ योजना में निश्चित करता है।

9. कक्षा में आने वाली समस्याओं तथा विद्यार्थियों की कठिनाइयों का पूर्व अनुमान कर अध्यापक उनके निवारण के लिए विभिन्न उदाहरणों व घटनाओं पर विचार कर अपने शिक्षण में अपनाते हुए विविधता एवं सरलता पैदा करता है।

10. पाठ के योजनाबद्ध होने से शिक्षक पाठ में भूलें नहीं करता। इससे शिक्षक में आत्मविश्वास एवं छात्रों में आत्मसंतोष उत्पन्न होता है।

11. पाठ योजना विद्यार्थियों की अभिरुचियों, योग्यताओं आवश्यकता एवं व्यक्तिगत भिन्नताओं को समझने में विशेष सहायक है क्योंकि शिक्षक को इसके अनुरूप पाठ योजना बनानी होती है।

12. पाठ योजना से अध्यापक का शिक्षण कार्य सहज, सुगम व सरल होता है जिससे छात्रों को ज्ञानार्जन में सुविधा रहती है। वह कक्षा में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं, जिससे कक्षा में अनुशासन बना रहता है। इसके लिए अध्यापक को अलग से प्रयास नहीं करना पड़ता।

13. गृहकार्य की नियमित व्यवस्था पाठ को योजनाबद्ध करने से ही निश्चित हो सकती है।

2.3.4 पाठ योजना की रूपरेखा :

1. विषय, प्रकरण, कक्षा, कालांश तथा दिनांक
2. सामान्य उद्देश्य
3. विशिष्ट उद्देश्य
4. प्रस्तावना
5. उद्देश्य कथन
6. प्रस्तुतीकरण
7. विकासात्मक प्रश्न
8. स्पष्टीकरण
9. श्यामपट्ट सार
10. पुनरावृति प्रश्न
11. गृह कार्य

हरबर्ट पाठ योजना में इन्हीं बिन्दुओं का अनुसरण किया जाता है। इन बिन्दुओं का विवेचन इस प्रकार है :–

1. **विषय, कक्षा तथा प्रकरण आदि** : सर्वप्रथम प्रकरण (उप–विषय) का चयन किया जाता है और कक्षा, दिनांक तथा विभाग पूर्व निर्धारित कर लिए जाते हैं। यह पाठ योजना का विशिष्टीकरण तथा सीमांकन होता है।

2. **सामान्य उद्देश्य** : प्रथम बिन्दुओं के आधार पर सामान्य उद्देश्यों को निर्धारित किया जाता है। भाष शिक्षण के उद्देश्य अन्य विषयों के सामान्य उद्देश्य से भिन्न होते हैं। एक ही विषय का प्रकरण विभिन्न स्तरों पर शिक्षण के लिए प्रयोग होता है किन्तु उनके सामान्य उद्देश्य भिन्न होते हैं।

3. **विशिष्ट उद्देश्य** : विशिष्ट उद्देश्य उप–विषय तथा विद्यार्थियों के स्तर के अनुसार भिन्न–भिन्न होते हैं। भाषा शिक्षण के यदि कौशलात्मक या ज्ञानात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति करनी है तो विशिष्ट उद्देश्य भिन्न–भिन्न होंगे। विषय के प्रकरण के आधार पर विशिष्ट उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं।

4. **प्रस्तावना** : शिक्षक पढ़ाए जाने वाले पाठ की भूमिका प्रस्तावना के अन्तर्गत लिख लेता है। प्रस्तावना में छात्रों को पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित प्रश्नों की सहायता से नवीन प्रकरण पर लाया जाता है। इसमें अधिक सूझ–बूझ की आवश्यकता होती है। पाठ के आरम्भ करने में प्रकरण की भूमिका के लिए प्रस्तावना स्तर के प्रश्नों की सहायता ली जाती है।

5. **उद्देश्य कथन** : प्रस्तावना स्तर के प्रश्नों की सहायता से शिक्षक छात्रों के प्रकरण निकलवाता है और प्रकरण का कथन देता है कि आज इस प्रकरण का अध्ययन करेंगे।

6. **विकासात्मक प्रश्न** : उद्देश्य कथन के बाद शिक्षक जब पाठ आरम्भ करता है तो विषय का प्रस्तुतीकरण करने के लिए प्रश्नों को पूछता है जिन्हें विकासात्मक प्रश्न कहते हैं। ऐसे प्रश्न पाठ में तार्किक विकास के लिए महत्वपूर्ण होते हैं।

7. **स्पष्टीकरण** : विकासात्मक प्रश्नों का उत्तर जब छात्र स्पष्ट रूप में नहीं दे पाते, उस समय शिक्षक उनका स्पष्टीकरण करने के लिए अपना कथन देता है।

8. **श्यामपट्ट सार** : अध्यापक शिक्षण बिन्दुओं तथा उनकी व्याख्या को श्यामपट्ट पर अंकित करता है।

9. **पुनरावृति प्रश्न** : श्यामपट्ट सार को छात्र भी उत्तर पुस्तिकाओं में लिख लेते हैं, उसके बाद शिक्षक श्यामपट्ट सार को मिटा देता है। प्रकरण दोहराने तथा अभ्यास कराने के लिए प्रश्नों को पूछता है। इन प्रश्नों की सहायता से ज्ञान को स्थायी बनाया जाता है तथा विचारों को सुव्यवस्थित रूप दिया जाता है। पुनरावृति प्रश्नों के माध्यम से छात्रों की ज्ञान प्राप्ति का बोध होता है।

10. गृह कार्य : शिक्षक प्रकरण से सम्बन्धित गृह कार्य देता है। गृह कार्य का उद्देश्य भी अभ्यास तथा दोहराई ही है।

2.3.5 पाठ योजना के प्रकार :

पाठ योजना तीन प्रकार की होती है :–

1. **वार्षिक योजना** : जब कोई अध्यापक अपने विषय से सम्बन्धित वर्ष भर के लिए योजना बनाता है तो वह वार्षिक योजना कहलाती है। जैसे कि यदि कोई अध्यापक पूरे पाठ्यक्रम को निश्चित समयावधि में पूरा करने के लिए योजना बनाए और अपने पाठों के साथ–साथ बच्चों के व्यक्तित्व के विकास की योजना वर्ष भर के लिए बनाए तो वह वार्षिक योजना कहलाती है।

2. **इकाई योजना** : यह योजनाएँ अल्पाध्धि में लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बनाई जाती है। जैसे दो माह में कितने पाठ किस खंड के करवाए जाएँगे इत्यादि।

3. **दैनिक योजना** : यह प्रतिदिन कक्षा में दिए जाने वाले पाठ से सम्बन्धित योजना होती है।

2.3.6 पाठ्यक्रम :

पाठ्य–क्रम शिक्षा पद्धति का आवश्यक अंग है। अध्यापक किसी भी शिक्षा–पद्धति का अनुसरण करे, वह किसी भी शिक्षण विधि का प्रयोग करे और वह कोई भी विषय पढ़ाये उसे एक निश्चित पाठ्य–क्रम के अनुसार कार्य करना होता है। पाठ्य–क्रम के बिना न तो वह शिक्षण को व्यवस्थित कर पाता है और न ही शिक्षा के व्यापक तथा तात्कालिक उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हो सकता है।

पाठ्य–क्रम का शाब्दिक अर्थ : 'पाठ्य–क्रम' दो शब्दों के योग से बना है–पाठ्य–क्रम अर्थात् पढ़ने योग्य सामग्री का क्रम। इस का अर्थ यह हुआ कि विद्यार्थियों के सामने जो विषय सामग्री प्रस्तुत की जाती है उस का निश्चित क्रम निर्धारित किया जाता है और अध्यापक को उसका अनुकरण करना होता है।

2.3.6.1 पाठ्यक्रम एवं पाठ्य सामग्री का निर्माण :

1. **उद्देश्यों के अनुकूल :** विभिन्न शिक्षा स्तरों पर हिन्दी–शिक्षण के भिन्न भिन्न उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं। मातृ भाषा तथा दूसरी भाषा के रूप में हिन्दी–शिक्षण के उद्देश्यों में भिन्नता होगी। पाठ्य–क्रम इन उद्देश्यों के अनुकूल होना चाहिए। ये उद्देश्य पाठ्यक्रम प्रतिबिम्बित होने चाहिए।

2. **बच्चों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के अनुसार :** पाठ्य–क्रम का प्रयोग विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए किया जाता है। इसलिए उसके निर्माण में विद्यार्थियों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

3. **बच्चों की रुचियों तथा अधिगम क्षमताओं के अनुकूल :**प्रत्येक शैक्षिक स्तर के लिए हिन्दी का पाठ्य–क्रम तैयार करते समय विद्यार्थियों की रुचियों तथा अधिगम क्षमताओं का भी ध्यान रखना चाहिए। छोटे बच्चे कहानियों में रुचि लेते हैं और किशोर साहसिक घटनाओं तथा आदर्श चरित्र में रुचि लेते हैं। यदि पाठ्य–क्रम में उन की रुचियों के

अनुरूप पाठ्य–सामग्री संकलित हो तो उन में वे स्वाभाविक रूप से रुचि लेते हैं जिस के परिणाम स्वरूप शिक्षण–प्रक्रिया सजीव हो उठती है।

4. **भाषायिक आवश्यकताओं के अनुरूप** : भाषा के द्वारा विद्यार्थियों को अपने भाव एवं विचार व्यक्त करना सिखाया जाता है और दूसरों के विचार समझने के योग्य बनाया जाता है। विभिन्न शिक्षा–स्तरों पर विद्यार्थियों के विचारों की दिशा अलग अलग होती है। इसी के अनुसार उन की भाषायिक आवश्यकताओं में भी भिन्नता होती है। पाठ्य–क्रम तैयार करते समय विद्यार्थियों की भाषायिक भिन्नताओं को भी ध्यान में रखना चाहिए।

5. **सभी तत्वों का सन्तुलन** : भाषा–शिक्षण में विद्यार्थियों को भाषा के विभिन्न तत्वों का ज्ञान प्रदान किया जाता है। भाषा के चारों कौशलों के ज्ञान के साथ–साथ उन्हें साहित्य की विभिन्न विधाओं, विभिन्न विषयों तथा व्याकरण आदि का भी ज्ञान दिया जाता है। पाठ्य–क्रम में इन सब का सन्तुलित रूप प्रस्तुत होना चाहिए।

6. **जीवन के विभिन्न पहलुओं का समावेश** : पाठ्य–क्रम किसी काल्पनिक लोक पर आधारित नहीं होना चाहिए बल्कि वास्तविक जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए। उस में जीवन की विविधता प्रतिबिम्बित होनी चाहिए। उस में सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलू उजागर होने चाहिए। ऐसा पाठ्य–क्रम विद्यार्थियों को जीवन की विविधताओं के साथ सामंजस्य स्थापित करना सिखाता है।

7. **विकास क्रम के अनुकूल** : पहली श्रेणियां बच्चे के विकास–क्रम का पहला सोपान है। उस के पश्चात् आने वाली सीढ़ियाँ उस के विकास क्रम की ओर संकेत करती है। किसी भी कक्षा के लिए हिन्दी का पाठ्य–क्रम बनाते समय पिछली कक्षा के पाठ्य–क्रम को सम्मुख रखना चाहिए ताकि स्वाभाविक विकास बना रहे।

8. **भविष्य के निर्माण में सहायक** : विद्यार्थियों को भविष्य के लिए तैयार करना भी शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं। इस उद्देश्य को सम्मुख रखते हुए विद्यार्थियों में कुछ

व्यावहारिक, सामाजिक एवं नैतिक परिवर्तन लाने को कोशिश की जाती है। अतः पाठ्य–क्रम में भावी जीवन के आशायें एवं आकांक्षायें समाहित होनी चाहिए। उस से विद्यार्थियों के मन में भावी जीवन के प्रति आस्था उत्पन्न हो और उन्हें सामाजिक जीवन जीने की प्रेरणा भी मिले।

9. नैतिक मूल्यों का समावेश : भावी पीढ़ी में नैतिक मूल्यों का विकास करना शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है और इस उद्देश्य की पूर्ति में भाषा की शिक्षा मुख्य भूमिका निभाती है। इस के लिए आवश्यक है कि पाठ्य–क्रम में ऐसे विषयों एवं क्रियाओं को स्थान दिया जाये जो विद्यार्थियों को सही मार्ग की ओर अग्रसर करने में सहायक हों।

10. निर्धारित समय के अनुकूल : पाठ्य–क्रम को शैक्षिक सत्र में समाप्त करना होता है। उस के लिए स्कूल के टाईम–टेबल में पीरीयड निर्धारित किए जाते हैं। पाठ्यक्रम की रचना करने वालों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पाठ्य–क्रम इतना लम्बा हो जो आसानी के साथ सत्र में समाप्त हो सके और निर्धारित पीरीयडों में उसे अच्छी प्रकार से नियोजित किया जा सके।

11. न अधिक कठिन, न अधिक सरल : पाठ्य–क्रम निर्माताओं को वैयक्तिक विभिन्नता के सिद्धांत की ओर भी ध्यान देना चाहिए। कोई भी दो व्यक्ति एक जैसे नहीं होते। उन के मानसिक एवं बौद्धिक स्तर में भिन्नता होती है। अतः पाठ्य–क्रम न अधिक कठिन होना चाहिए और न अधिक सरल होना चाहिए।

12. लचीलेपन का सिद्धान्त : समय परिवर्तनशील है। समय के परिवर्तन के अनुसार पाठ्य–क्रम में भी आवश्यक परिवर्तन होने चाहिए। यह तभी हो सकता है जब पाठ्य–क्रम लचीला हो। उस में आवश्यकतानुसार परिवर्तन की पर्याप्त गुंजायश होनी चाहिए। परिणाम स्वरूप ऐसा कठोर पाठ्य–क्रम शिक्षा और शिक्षण को रुढ़िग्रस्त बना देता है और भावी पीढ़ी पिछड़ेपन का शिकार हो जाती है। अतः पाठ्य–क्रम के निर्माण लचीलेपन के सिद्धान्त को सम्मुख रख कर बनाया जाना चाहिए।

13. इकाईयों में विभाजित : पाठ्य–क्रम छोटी छोटी इकाईयों में विभाजित होना चाहिए। छोटी इकाईयों से पाठ्यक्रम सुबोध, स्पष्ट एवं सुग्राह बन जाता है। प्रत्येक इकाई का किसी न किसी उद्देश्य से सम्बन्ध होना चाहिए और उद्देश्य स्पष्ट तथा व्यावहारिक शब्दों में व्यक्त होना चाहिए। इस से अध्यापक और विद्यार्थी दोनों को किसी प्रकार का भ्रम नहीं रहता।

2.3.6.2 पाठ्यक्रम विश्लेषण :

पाठ्यक्रम के विश्लेषण से अभिप्राय पाठ्यक्रम के निर्माण के पश्चात् यह जांच करना है कि वह शिक्षण के उद्देश्यों को कहाँ तक पूरा करने में समर्थ हुआ है। आज हिन्दी पूरे देश की राष्ट्रभाषा घोषित हो चुकी है। इसलिए हिन्दी भाषा का पाठ्यक्रम सभी स्तरों पर और सभी राज्यों में पढ़ाया जा रहा है। इसीलिए हिन्दी भाषा की उपयोगिता में वृद्धि हुई है। अतः हिन्दी भाषा का पाठ्यक्रम प्रत्येक दृष्टि से सुदृढ़ होना चाहिए। यदि हम आज हिन्दी भाषा के पाठ्यक्रम पर बात करें तो हमें अनेक कमियाँ नजर आएँगी जिसके फलस्वरूप हिन्दी भाषा को वह स्थान प्राप्त नहीं हो रहा जो उसे मिलना चाहिए। आज जरूरत इस बात की है कि वर्तमान पाठ्यक्रम में कालानुसार परिवर्तन हो, क्योंकि आज हमारे विद्यार्थी 21वीं शताब्दी में प्रवेश कर चुके हैं। यदि हम हिन्दी भाषा के पाठ्यक्रम के बारे में सकारात्मक दृष्टि से चिंतन करें तो उसमें अनेक त्रुटियां देखने को मिलती हैं :–

1. बालकों के लिए आज भी पाठ्यक्रम निर्धारित नहीं है। प्रत्येक शिक्षा संस्थान अपनी समझ से पाठ्यक्रम बनाते हैं।
2. प्राथमिक स्तर पर व्याकरण की शिक्षा प्रदान करना अनिवार्य है। उससे शिक्षा में वृद्धि होगी।

3. मातृभाषा के शिक्षण का उद्देश्य केवल भाषायी कौशल से ही संबंधित नहीं है। उसे देश की सभ्यता और संस्कृति का ज्ञान देना चाहिए। परन्तु वर्तमान पाठ्यक्रम यह सब करने में समर्थ नहीं है।
4. वर्तमान पाठ्यक्रम सिद्धान्तों पर अधिक बल प्रदान करता है। यह व्यावहारिकता की ओर कोई ध्यान नहीं देता।
5. वर्तमान पाठ्यक्रम व्यावसायिकता से जुड़ा है।
6. हिन्दी भाषा के पाठ्यक्रम में सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

1. सामान्य उद्देश्य और विशिष्ट उद्देश्य में अन्तर स्पष्ट करो।

.....

.....

2. इकाई योजना को परिभाषित कीजिए।

.....

.....

2.3.7 सारांश

इस अध्याय में हमने पाठ योजना और पाठ्यक्रम के बारे में विस्तारपूर्वक पढ़ा। पाठ्यक्रम में पाए जाने वाली इन कमियों को सरलता से दूर किया जा सकता है। थोड़ा प्रयत्न तथा सावधानी से हम पाठ्यक्रम को प्रभावशाली, व्यापक एवं दोषरहित बना सकते हैं।

वैसे वर्तमान समय में माध्यमिक स्तर का पाठ्यक्रम कुछ कमियों के होते हुए भी एक सफल पाठ्यक्रम है क्योंकि यह हिन्दी भाषा के शिक्षण–महत्व, उद्देश्यों एवं सिद्धांतों की कसौटी पर खरा उतरता है।

2.3.8 स्वयं जांच अभ्यास

खाली स्थान भरो।

1. .....उद्देश्य उप विषय तथा विद्यार्थियों के स्तर के अनुसार भिन्न होते हैं।
2. पाठ योजना में सर्वप्रथम.....का चयन किया जाता है।

उत्तर : 1. विशिष्ट 2. प्रकरण

2.3.9 अभ्यासात्मक प्रश्न

1. योजना से आपका क्या अभिप्राय है?
2. कक्षा शिक्षण में अध्यापक के लिए पाठ योजना का क्या महत्व है?
3. शिक्षण प्रक्रिया में दैनिक पाठ योजना क्यों आवश्यक है?
4. पाठ योजना कितने प्रकार की होती है?
5. पाठ्यक्रम से आपका क्या अभिप्राय है?
6. पाठ्य सामग्री का कक्षा शिक्षण में क्या उपयोगी है?
7. पाठ्यक्रम के निर्माण के समय किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है?

2.3.10 सहायक पुस्तकें

1. हिन्दी शिक्षण : ज्योति खन्ना–धनपत राय एण्ड क. (प्रा.) लि., दिल्ली
2. हिन्दी भाषा शिक्षण : सुरेश नायक–टवेन्टी फस्ट सैंचुरी, पटियाला
3. हिन्दी शिक्षण : रामशरण पाण्डेय–विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
4. हिन्दी शिक्षण विधियाँ : शर्मा एण्ड भाटिया–टण्डन पब्लिकेशन, लुधियाना
5. आधुनिक हिन्दी शिक्षण : डॉ. योगेश कुमार सिंह–ए.पी.एच. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, नई दिल्ली
6. हिन्दी शिक्षण : सुरिन्द्र सिंह कादियान–विनोद पब्लिकेशनज, लुधियाना
7. हिन्दी अध्यापन : डॉ. सर्वजीत कौर बराड़, कल्याणी पब्लिशर्ज, लुधियाना

मूल्यांकन अर्थ एवं परिभाषाएं, उद्देश्य, महत्व, सोपान, पुनिधियां, अच्छे मूल्यांकन की विशेषताएं

2.4.1 उद्देश्य
2.4.2 भूमिका
2.4.3 मूल्यांकन का अर्थ
2.4.4 भाषा शिक्षण में मूल्यांकन के उद्देश्य
2.4.5 हिन्दी शिक्षण में मूल्यांकन का महत्व
2.4.6 मूल्यांकन के सोपान
2.4.7 मूल्यांकन की विधियाँ
2.4.8 अच्छे मूल्यांकन की विशेषताएँ
2.4.9 आदर्श प्रश्न पत्र निर्माण के सिद्धान्त
2.4.10 सारांश
2.4.11 स्वयं जांच अभ्यास
2.4.12 अभ्यासात्मक प्रश्न
2.4.13 सहायक पुस्तकें

2.4.1 उद्देश्य

1. मूल्यांकन को परिभाषित कर सकेंगे।
2. भाषा शिक्षण में मूल्यांकन के उद्देश्यों की व्याख्या कर सकेंगे।
3. हिन्दी शिक्षण में मूल्यांकन के महत्व को बता पाएंगे।
4. मूल्यांकन के सोपान बता पाएंगे।
5. मूल्यांकन की विभिन्न विधियों में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे।

2.4.2 भूमिका

प्रत्येक कार्य की सफलता का परिचय उसके उद्देश्य प्राप्ति की जाँच पर निर्भर करता है। अध्यापक एवं विद्यार्थी द्वारा शिक्षा मूल्यों की प्राप्ति की जाँच मूल्यांकन अथवा परीक्षण द्वारा हो सकती है। जाँच, मापन, परख, परीक्षा एवं मूल्यांकन एक–दूसरे के

पर्यायी शब्द अपनी संकीर्णता एवं व्यापकता की दृष्टि से भिन्न हैं। इन सबमें से मूल्यांकन अपेक्षाकृत अधिक व्यापक, विस्तृत एवं निरन्तर प्रक्रिया है। पहले शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी को पढ़ाना, लिखाना एवं हिसाब सिखाना होता था। बालक कहाँ तक सीखने में सफल हो सके हैं इसकी जाँच परीक्षा द्वारा की जाती थी। आज शिक्षा के उद्देश्य व्यापक हो चुके हैं। बालक का चहुँमुखी विकास शिक्षा का उद्देश्य है। भाषा ज्ञान की इस चहुँमुखी विकास में विशेष भूमिका है। अध्यापक और विद्यार्थी इन उद्देश्यों की प्राप्ति में कहाँ तक सफल हुए हैं इसकी परख मूल्यांकन द्वारा की जाती है, जो परीक्षा का व्यापक रूप है।

मूल्यांकन अर्थात् मूल्य आंकना। शिक्षण प्रक्रिया में मूल्य से अभिप्राय उसके निर्धारित उद्देश्यों से है। भाषा शिक्षण में मूल्यांकन से तात्पर्य है भाषा शिक्षण के उद्देश्यों, उनसे सम्बन्धित पाठ्यक्रम, अध्यापक द्वारा अपनाई विधियों, निर्धारित पाठ्य पुस्तक तथा विद्यार्थी की भाषा के प्रति रुचि, दृष्टिकोण एवं योग्यता आदि से उसके व्यवहार परिवर्तन का मूल्यांकन। अतः मूल्यांकन का क्षेत्र अधिक विस्तृत है।

2.4.3 मूल्यांकन का अर्थ

- **क्लार एवं स्टार के अनुसार–** "मूल्यांकन वह निर्णय एवं विश्लेषण है जो विद्यार्थी के कार्य से प्राप्त सूचनाओं से निकाला जाता है।"
- **सी.सी. रॉस के अनुसार–** "मूल्यांकन के अन्तर्गत बालक के समूचे व्यक्तित्व अथवा शिक्षा की समूची प्रक्रिया की जाँच की जाती है।"
- **जे. डब्ल्यू. राईटस्टोन के अनुसार–** "मूल्यांकन में व्यापक व्यक्तित्व से संबंधित परिवर्तनों तथा शिक्षा कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्यों पर बल दिया जाता है। इसमें केवल विषय वस्तु का ही मूल्यांकन सम्मिलित नहीं होता बल्कि प्रवृत्तियों, रुचियों, आदर्शों, चिन्तन विधियों, काम की आदतों तथा वैयक्तिक एवं सामाजिक समायोजन योग्यताओं की मूल्यांकन भी सम्मिलित है।"
- **शिक्षा आयोग के अनुसार–** "मूल्यांकन एक क्रमिक प्रक्रिया है जो सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह शिक्षा के उद्देश्यों से घनिष्ठ रूप से संबंधित है। मूल्यांकन बालकों की अध्ययन की आदतों तथा शिक्षण विधियों पर बहुत प्रभाव डालता है। यह केवल शैक्षिक उपलब्धि के मापन में ही सहायता नहीं देता है वरन् उसमें सुधार भी करता है।"
- **राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद के अनुसार–**मूल्यांकन एक ऐसी सतत व व्यवस्थित प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति, कक्षा में प्रदान किए गए अधिगम अनुभव एवं व्यवहार परिवर्तन की प्रक्रिया आदि का समावेश होता है।" आधुनिक प्रत्यय में मूल्यांकन में विभिन्न विधियों, प्रविधियों तथा तकनीकों का उपयोग है तथा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया द्वारा व्यक्तित्व विकास तथा मानव व्यवहार के सभी पक्षों–ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक

व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों की निरन्तर जाँच करता है। इस प्रकार मूल्यांकन में तीन तत्वों की उपस्थिति आवश्यक होती है। यह तीन तत्व इस प्रकार हैं–

1. शिक्षण उद्देश्य
2. अधिगम अनुभव
3. व्यवहार परिवर्तन

2.4.4 भाषा शिक्षण में मूल्यांकन के उद्देश्य

मूल्यांकन की आवश्यकता एवं महत्ता भाषा शिक्षण में उसके उद्देश्य निर्धारित करती है। भाषा शिक्षण में मूल्यांकन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(1) भाषा शिक्षण के उद्देश्य स्पष्ट करना।
(2) भाषा के पाठ्यक्रम, पाठ्य पुस्तक एवं शिक्षण विधियों की जाँच करना।
(3) भाषा शिक्षण द्वारा विद्यार्थी के व्यवहार सम्बन्धी परिवर्तन की जाँच करना।
(4) विद्यार्थियों की भाषा शिक्षण सम्बन्धी कठिनाइयों को जानकर उनका निराकरण करना।
(5) विद्यार्थियों की भाषा सम्बन्धी उपलब्धियों को जानकर उनको प्रोत्साहित करना।
(6) विद्यार्थियों को भाषा सम्बन्धी ज्ञान अर्जित करने के लिए प्रेरित करना।
(7) छात्रों में रचनात्मक व सृजनात्मक योग्यता विकसित करना।
(8) बालकों को साहित्य के विस्तृत अध्ययन के लिए प्रेरित करना।

2.4.5 हिन्दी शिक्षण में मूल्यांकन का महत्त्व

किसी भी कार्य के उपरान्त यह जानना आवश्यक होता है कि उसमें कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है। हिन्दी भाषा जो कि सभी विषयों की ज्ञान प्राप्ति का माध्यम है, इसके शिक्षण में मूल्यांकन का बहुत महत्त्व है–

1. **हिन्दी भाषा शिक्षण के उद्देश्यों में सहायक–** शिक्षा के विभिन्न स्तरों में भाषा शिक्षण के उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं। इन उद्देश्यों की प्राप्ति की जानकारी मूल्यांकन से जानी जा सकती है। जैसे भाषा शिक्षण का उद्देश्य है विद्यार्थियों को हिन्दी भाषा के साहित्य का ज्ञान प्रदान करना। अध्यापक एवं विद्यार्थी द्वारा इस उद्देश्य की प्राप्ति में जो प्रयत्न किए गए तथा उनको कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई, इसकी जानकारी मूल्यांकन द्वारा की जा सकती है।

2. **पाठ्यक्रम का पुनर्गठन–** भाषा–शिक्षण के उद्देश्य के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण के सिाद्धान्तों को अपनाते हुए पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाता है। मूल्यांकन द्वारा यह जाना जा सकता है कि पाठ्यक्रम कहाँ तक उचित है क्योंकि पाठ्यक्रम यदि कठिन अथवा विद्यार्थियों मे मानसिक स्तर के अनुरूप नहीं होगा तो उसका परिणाम सामूहिक रूप से ठीक नहीं होगा। अतः मूल्यांकन द्वारा भाषा शिक्षण के पाठ्यक्रम का पुनर्गठन किया जा सकता है।

3. **भाषा शिक्षण विधियों में मूल्यांकन की महत्ता**–भाषा शिक्षण में साहित्य के विभिन्न रूपों का ज्ञान प्रदान किया जाता है जैसे गद्य, पद्य व व्याकरण शिक्षण। इसके लिए भिन्न–भिन्न शिक्षण विधियाँ अपनाई जाती हैं। अध्यापक उन विधियों को अपनाने में कहाँ तक सफल हुआ है, इसकी जानकारी उसे मूल्यांकन द्वारा होती है। मूल्यांकन के परिणाम के अनुरूप अध्यापक अपनी शिक्षण विधियों में परिवर्तन ला सकता है।

4. **अध्यापक के लिए मूल्यांकन की महत्ता**–अध्यापक एक आदर्श भाषा अध्यापक के गुणों को कितना आत्मसात् करता हुआ शिक्षण व्यवस्था करता है, उसकी जाँच विद्यार्थियों के मूल्यांकन से होती है। उसे मूल्यांकन द्वारा शिक्षण प्रक्रिया में अपनी कमियों का आभास होता है। उन्हें सुधारने के लिए अध्यापक शिक्षण उपकरणों का प्रयोग कर, विभिन्न शिक्षण सिद्धान्तों व सूत्रों का परिपालन कर एवं भाषा शिक्षण की व्यावहारिक शिक्षण विधियों को अपनाता हुआ अपने शिक्षण में विभिन्नता लाता है। अध्यापक विद्यार्थियों के मानसिक स्तर के अनुसार उनका वर्गीकरण मूल्यांकन द्वारा कर सकता है।

5. **विद्यार्थी के लिए मूल्यांकन की महत्ता**– विद्यार्थी के लिए मूल्यांकन की उपयोगिता सर्वोपरि है। मूल्यांकन से उसे अपने भाषा ज्ञान की योग्यता का पता लगता है। मूल्यांकन ही विद्यार्थियों की शैक्षणिक प्रगति का मापदण्ड है। भाषा शिक्षण द्वारा विद्यार्थी के व्यक्तित्व में किस प्रकार का परिर्वतन हुआ है, उसे भाषागत कितनी उपलब्धि हुई है, भाषा सम्बन्धी उसकी अशुद्धियाँ क्या हैं, उसमें कहाँ तक अभिव्यक्ति की योग्यता विकसित हुई है, उसकी साहित्य के प्रति रुचि एवं योग्यता की जानकारी मूल्यांकन द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है।

6. **पाठ्य पुस्तक निर्माण में मूल्यांकन की महत्ता**–मूल्यांकन से पाठ्य पुस्तक की भी जाँच होती है। पाठ्यपुस्तक विद्यार्थियों के मानसिक स्तर के अनुरूप होनी चाहिए। उसकी विषय सामग्री में विविधता होनी चाहिए। ऐसा होने पर विद्यार्थियों पर इसका अपेक्षित प्रभाव पड़ेगा जिसका परिचय उनके मूल्यांकन के परिणाम से प्राप्त होता है। अतः पाठ्य पुस्तक के औचित्य की जाँच मूल्यांकन द्वारा हो सकती है।

7. **अभिभावकों को बालकों की योग्यता का परिचय**–मूल्यांकन से विद्यार्थियों की भाषा सम्बन्धी योग्यता एवं शैक्षणिक क्रियाओं का परिचय अध्यापक के साथ उनके अभिभावकों को भी होता है जिससे वह बालकों को शिक्षण के उचित साधन जुटा उनकी मदद कर सकते हैं।

8. **विद्यार्थियों के लिए प्रेरणास्रोत**– शिक्षण व्यवस्था में मूल्यांकन ध्येय एवं लक्ष्य का काम करता है जिसकी प्राप्ति के लिए विद्यार्थी सतत् परिश्रम करता है। वह भाषा व साहित्य का विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर परीक्षण में सफलता प्राप्त करता है। अतः मूल्यांकन उनका मार्गदर्शन करता है।

9. भावी जीवन में मूल्यांकन की आवश्यकता– मूल्यांकन शिक्षा के साथ बालक के भावी जीवन का भी अपरिहार्य अंग है। शैक्षिक एवं व्यावसायिक क्षेत्रों में बालक की शिक्षा का मूल्य उसके मूल्यांकन के परिणाम द्वारा आंका जाता है। मूल्यांकन द्वारा विद्यार्थियों के शैक्षिक व व्यावसायिक निर्देशन में सहायता मिलती है। कौन सा विद्यार्थी किस विषय में उच्च अध्ययन कर सकता है उसका निर्णय मूल्यांकन द्वारा होता है।

10. अनुसंधान में मूल्यांकन की आवश्यकता– शिक्षण व्यवस्था में अनुसंधान व शोध कार्य मूल्यांकन पर आधारित है। भाषा शिक्षण के विभिन्न पहलुओं में शोध कार्य के लिए मूल्यांकन द्वारा जाँच की जाती है कि वर्तमान शिक्षण व्यवस्था कैसी है। उसको उन्नत करने के लिए किस प्रकार के कार्यक्रमों को सम्मिलित किया जा सकता है? अतः मूल्यांकन समस्त शिक्षण प्रक्रिया की स्थिति प्रकट करता है तथा इसमें शोध व अनुसंधान कार्य की ओर उन्मुख करता है।

11. विद्यार्थियों की प्रगति जानने में सहायक-परीक्षा एवं मूल्यांकन से विद्यार्थियों की प्रगति जानने में सहायता मिलती है। परीक्षा के आधार पर विद्यार्थी की योग्यता के स्तर की जानकारी प्राप्त होती है। निश्चित अवधि में विद्यार्थी ने कितनी योग्यता प्राप्त की है।

12. विद्यार्थियों की कमजोरियाँ जानने में सहायक– विद्यार्थियों की कमजोरी को परीक्षा फल के आधार पर जाना जा सकता है। कमजोरियों का निदान मूल्यांकन द्वारा किया जा सकता है और विद्यार्थियों को उन्नति के रास्ते पर अग्रसर किया जा सकता है।

13. व्यक्तिगत ध्यान देने में सहायक– मनावैज्ञानिक आधार पर विद्यार्थियों के प्रति प्रत्येक शिक्षक का व्यक्तिगत ध्यान होना आवश्यक है परन्तु यह मूल्यांकन के द्वारा ही जाना जा सकता है कि उसकी कमजोरियाँ क्या, कैसी और किससे सम्बन्धित हैं। प्रत्येक विद्यार्थी को उसकी योग्यताएँ एवं आवश्यकताओं के आधार पर उसे बढ़ने के लिए अवसर प्रदान करना चाहिए। अध्यापक मूल्यांकन के आधार पर व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक विद्यार्थी के प्रति (मूल्यांकन) व्यक्तिगत ध्यान देने के योग्य बनाता है।

15. विद्यार्थियों को उनके बौद्धिक ज्ञान के आधार पर विषय चुनने में सहायक– विद्यार्थियों को उनकी रुचि एवं क्षमता के आधार पर विषय चुनने में परीक्षाएँ महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। हाईस्कूल तक विद्यार्थियों को सभी विषय पढ़ने पड़ते हैं। मैट्रिक के परीक्षा फल के आधार पर निर्धारित किया जाता है किस विषय विशेष का अध्ययन उच्च माध्यमिक स्तर पर किया जाये। इस प्रकार परीक्षा/मूल्यांकन विद्यार्थियों को रुचि अनुसार विषय अनुसार विषय चुनने में सहायक भूमिका अदा करती है।

16. रिकार्ड रखने में सहायक– विद्यार्थियों के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास के लिए नियमित रिकार्ड रखना आवश्यक होता है। परीक्षाओं के अभाव में रिकार्ड रखना संभव नहीं हो सकता। परीक्षाओं के परिणाम के आधार पर ही विद्यार्थियों

की प्रगति का ब्यौरा रखा जा सकता है। परीक्षा के आधार पर केवल बौद्धिक ज्ञान का ही रिकार्ड तैयार नहीं होता है बल्कि व्यक्तित्व के सभी पक्षों की उन्नति का रिकार्ड तैयार किया जाता है, जैसे– शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, सौन्दर्यात्मक इत्यादि।

17. विभिन्न विषयों के उन्नयन एवं विकास में सहायक– विभिन्न शिक्षा–स्तरों पर कई विषय पढ़ाये जाते हैं। हिन्दी–भाषा भी एक विषय है। प्रत्येक विषय में निरन्तर परिवर्तन एवं परिवर्द्धन होता रहता है। उसे शिक्षण में समाहित करने की आवश्यकता है। किस स्तर पर किस विषय का कितना स्तर होना चाहिए– इस के निर्णय में भी परीक्षाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। इसके अतिरिक्त यदि किसी विषय को परीक्षा की परिधि से बाहर निकाल दिया जाए तो उसका वांछित विकास नहीं हो पाता। अतः प्रत्येक विषय को विकास की ओर अग्रसर करने में परीक्षाओं का महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है।

19. स्तर–स्थापन करने में सहायक– परीक्षा के द्वारा शिक्षा के अलग–अलग स्तर पर निश्चित करने में सहायता मिलती है। कौन विद्यार्थी शिक्षा के किस स्तर के योग्य हैकृइस का निर्णय परीक्षा के द्वारा किया जाता है। हर साल वार्षिक परीक्षा आयोजित की जाती है। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों को अगले स्तर पर भेज दिया जाता है और अनुत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों को उसी स्तर पर रहने दिया जाता है। परीक्षा के बिना विभिन्न शिक्षा–स्तरों को निश्चित करना असम्भव है।

2.4.6 मूल्यांकन के सोपान

परीक्षा व्यवस्था में प्रश्न पत्र अनिवार्य है। इसके बिना परीक्षा संभव नहीं हो सकती। मूल्यांकन में अध्यापक को निम्नलिखित सोपानों का अनुकरण करना चाहिए–

1. **उद्देश्यों का ज्ञान** प्रश्न पत्र बनाते समय अध्यापक को उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए अंक विभाजन करना चाहिए। हिन्दी का प्रश्न पत्र बनाते समय पाठ्य सामग्री, व्याकरण, रचना (बोध, अभिव्यक्ति, सौंदर्य) आदि के मूल्यांकन का उद्देश्य सामने रखकर अंक विभाजन करना चाहिए।

2. **विषय वस्तु वर्गीकरण** हिन्दी शिक्षण में विभिन्न प्रकार की विषय वस्तु निर्धारित की जाती है– पाठ्य पुस्तक, शब्दार्थ, व्याकरण, वर्तनी, रचना, कविता इत्यादि। प्रत्येक भाग का अंश एवं उसके लिए निर्धारित अंक पहले ही तय कर लेना चाहिए, जैसे– पाठ्य पुस्तक (15), कविता (10), शब्दार्थ (10), व्याकरण (25) आदि।

3. **विभिन्न प्रकार के प्रश्नों के लिए निर्धारित अंक** विभिन्न प्रकार के प्रश्न जैसे– निबन्धात्मक, संक्षिप्त उत्तर, वस्तुनिष्ठ आदि। प्रश्नों की प्रकृति के आधार पर अंक विभाजित कर लेने चाहिए।

4. **प्रश्न पत्र की रूपरेखा तैयार करना** हिन्दी शिक्षण के उद्देश्यों, विषय वस्तु का विस्तार, प्रश्नों की विभिन्नता एवं अंक निर्धारित करने के पश्चात् प्रश्न पत्र की रूप

रेखा तैयार कर लेनी चाहिए। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के प्रश्नों की संख्या एवं उनके अंकों इत्यादि का स्पष्टीकरण होता है।

5. **प्रश्न बनाना** रूप रेखा के पश्चात् परीक्षक के समक्ष स्पष्ट भूमिका होती है, जिसके आधार पर वह निश्चित कर लेता है कि कितने निबन्धात्मक प्रश्न होंगे, कितने संक्षिप्त उत्तर से संबन्धित प्रश्न और कितने वस्तु निष्ठ प्रश्न होने चाहिए। सभी प्रश्नों का उद्देश्य भाषा के उद्देश्यों को प्राप्त करना होता है।

6. **परीक्षार्थियों के लिए स्पष्ट निर्देश** प्रत्येक खण्ड में प्रश्नों से सम्बन्धित आवश्यक निर्देश होने चाहिए। निर्देश सरल और स्पष्ट भाषा में होने चाहिए। प्रत्येक प्रश्न के समक्ष अंक अवश्य लिखने चाहिए। अंक लिखे होने पर विद्यार्थी उत्तर का विस्तार अंकों के आधार पर देते हैं।

7. **उत्तर तालिका बनाना** प्रश्न पत्र निर्माण के पश्चात् परीक्षक को उत्तर तालिका अवश्य बनानी चाहिए। उत्तरों को स्पष्ट उल्लेख होने से उत्तर पुस्तिका की जाँच करने में मदद मिलती है। किसी भी प्रकार की अनिश्चितता (असमंजस) की स्थिति नहीं होती है। उत्तर पुस्तिका के साथ ही उत्तर तालिका परीक्षकों को दे देनी चाहिए। परीक्षक एवं विषय अध्यापकों का आपस में तारतम्य होना चाहिए जिससे परीक्षक एवं विषय अध्यापक अच्छा मूल्यांकन कर सकेंगे।

2.4.7 मूल्यांकन की विधियाँ

मूल्यांकन करने की सबसे महत्वपूर्ण विधि परीक्षा है। पढ़ायी गई विषय सामग्री के आधार पर विद्यार्थियों को कुछ प्रश्न दे दिये जाते हैं। उनके उत्तरों के आधार पर विद्यार्थियों के विषय ज्ञान का पता लगाया जाता है। यह प्रक्रिया ही 'परीक्षा' है। परीक्षा के पुनः तीन भेद किए गए है–मौखिक परीक्षा, लिखित परीक्षा, प्रयोगात्मक परीक्षा।

1. **मौखिक परीक्षा–** मौखिक परीक्षा के अन्तर्गत विद्यार्थियों से मौखिक रूप से प्रश्न पूछकर मौखिक रूप से उत्तर सुन लिए जाते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों की उच्चारण योग्यता श्रवण कौशल और मौखिक कौशल को विकसित करना है। भाषा शिक्षण का मुख्य उद्देश्य बोलकर विचारों को व्यक्त करने की योग्यता का विकास करना है। मौखिक परीक्षा में उच्चारण योग्यता की जाँच, विद्यार्थी की उच्चारण शुद्धता, गति, हाव–भाव, स्वर के आरोहण–अवरोहण आदि की जाँच की जाती है। मौखिक परीक्षा से विद्यार्थियों के श्रवण कौशल की भी जाँच की जाती है।

मौखिक परीक्षा के दोष– इसका महत्वपूर्ण दोष यह है कि प्रत्येक विद्यार्थी से अलग–अलग प्रश्न पूछने पड़ते हैं। अध्यापक एक समय में इतने अधिक प्रश्न मस्तिष्क में नहीं रख सकता है। मौखिक परीक्षा में समय अधिक लगता है। इस परीक्षा की विश्वसनीयता संदेहयुक्त होती है। इससे गहन ज्ञान की जाँच नहीं की जा सकती है।

मौखिक परीक्षा की कमियों को दूर करने हेतु सुझाव–कमियों को दूर करने हेतु अध्यापक कुछ बातों को ध्यान में रख सकता है–समूह बनाकर प्रश्न पूछ सकता है। समूह में 4 विद्यार्थी होने चाहिए। उत्तर देने की तत्परता एवं शुद्धता और सटीक स्थिति को ध्यान में रखे। प्रश्नों की सूची बना लेनी चाहिए। प्रश्नों की समस्या का समाधान करने के लिए सबसे उत्तम विधि विद्यार्थी को पास बुलाकर प्रश्न पूछने चाहिए। इस प्रकार कुछ प्रश्नों को कुछ क्षण के बाद भी दोहराया जा सकता है। मौखिक परीक्षा प्राइमरी स्तर पर लेनी चाहिए क्योंकि बच्चे सुनाने में ज्यादा रुचि रखते हैं। मौखिक परीक्षा को कक्षा अनुशासन के लिए प्रयोग करना चाहिए इसे परीक्षा का आधार नहीं मानना चाहिए।

2. **लिखित परीक्षा–** भाषा ज्ञान को जाँचने का मुख्य आधार लिखित परीक्षा ही है क्योंकि लिखित परीक्षा के द्वारा भाषा के गहन ज्ञान की परख संभव है। लिखित परीक्षा की लोकप्रियता का यह प्रमाण है किसी भी क्षेत्र में योग्यता परीक्षण के लिए लिखित परीक्षा को ही आधार बनाया जाता है चाहे वह स्कूल, कॉलेज, प्रशासन, वैज्ञानिक आदि कोई भी क्षेत्र क्यों न हो सभी महत्वपूर्ण विभागों में लिखित परीक्षाओं के आधार पर कार्य–भार का दायित्व दिया जाता है। इसमें शैक्षणिक स्तर के आधार पर प्रश्न पत्र बनाया जाता है। उसी आधार पर ज्ञान का परीक्षण किया जाता है। एक समय में सैंकड़ों विद्यार्थियों का मूल्यांकन हो जाता है। लिखित परीक्षा के लिए बनाये गये प्रश्न पत्र के आधार पर इसे तीन उपभागों मे बांटा जा सकता है। (क) निबन्धात्मक परीक्षा (ख) लघु उत्तर (संक्षिप्त) परीक्षा, (ग) वस्तुनिष्ठ परीक्षा। यहाँ पर क्रमानुसार प्रत्येक परीक्षा का विवेचन किया जा रहा हैं–

(क) **निबन्धात्मक परीक्षा–** निबन्धात्मक परीक्षा के अन्तर्गत विद्यार्थियों के गहन भाषा ज्ञान की परीक्षा होती है। इसके अन्तर्गत विद्यार्थियों को निबन्ध के रूप में उत्तर लिखने होते हैं। परीक्षा के लिए विषय वस्तु पर आधारित प्रश्न पत्र में कम–से–कम 10 प्रश्न होते हैं, उनमें से विद्यार्थियों को केवल पाँच प्रश्नों के उत्तर तीन घंटे में देने होते हैं; विचारों का विश्लेषण करना, व्यवस्थित क्रम, भावों को व्यक्त करने के लिए शुद्ध भाषा प्रयोग, लिखने की गति आदि का मूल्यांकन एक ही समय में एक ही स्थान पर हो जाता है। इस परीक्षा में निम्न प्रकार के प्रश्न निर्धारित किये जाते हैं–

(i) 'साहित्य समाज का दर्पण है' पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
(ii) 'राम की शक्ति पूजा' का सार लिखें।
(iii) बिहारी की काव्यगत विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
(iv) हिन्दी साहित्य के काल विभाजन पर प्रकाश डालें।

निबन्धात्मक परीक्षा के दोष

(i) निबन्धात्मक परीक्षा में संपूर्ण विषय वस्तु का समावेश होता है। प्रश्न–पत्र में दिए गए 8 या 10 प्रश्नों में से केवल 4 या 5 प्रश्नों के उत्तर पर विद्यार्थी के भाषा ज्ञान का मूल्यांकन किया जाता है।

(ii) कभी–कभी यह भी देखने में आता है कि विद्यार्थी विकल्प के रूप में जिस विषय–वस्तु को छोड़ देते हैं प्रश्न–पत्र उसी अंश से आ जाता है जिससे विद्यार्थी को अंकों की हानि होती है।

(iii) निबन्धात्मक परीक्षा में विद्यार्थी विषय–वस्तु को रटने का प्रयास करता है। रटी हुई विषय–सामग्री एक निश्चित समय के बाद विस्मृति हो जाती है।

(iv) निबन्धात्मक परीक्षा में गहन ज्ञान का अभाव होता है विद्यार्थी अनावश्यक रूप से बिना सोचे–समझे पृष्ठ भरने का प्रयास करता है।

(v) निबन्धात्मक परीक्षा में जो विद्यार्थी लेखन कला में प्रवीण होते हैं अच्छे अंक प्राप्त कर लेते हैं जिसमें लेखन कला नहीं है वह अच्छे अंक प्राप्त नहीं कर पाता है।

(vi) निबन्धात्मक परीक्षा की विश्वसनीयता नहीं होती है। एक ही उत्तर पुस्तिका का मूल्यांकन जितने परीक्षकों द्वारा करवाया जायेगा उनके अंकों में विभिन्नता होगी।

(vii) निबन्ध परीक्षा व्यक्तिनिष्ठ होती है यदि विद्यार्थी की लेखन शैली परीक्षक के व्यक्तिगत विचारों भावों से मिलती होगी तो अंक अच्छे मिल जाते हैं। भाषा अभिव्यक्ति प्रत्येक व्यक्ति की भिन्न होती है।

(viii) परीक्षक की मानसिक स्थिति का प्रभाव भी कभी–कभी प्रभावित करता है क्योंकि लम्बे–लम्बे उत्तरों की जाँच करने के लिए धैर्य की आवश्यकता होती है यदि परीक्षक की मानसिक स्थिति पहले से ही कष्टदायक है तो उसका दुष्प्रभाव अंकन प्रणाली पर पड़ेगा।

(ix) निबन्धात्मक परीक्षा का मूल्यांकन दोषपूर्ण है परीक्षक की रुचि जाँच कार्य में न होने से वह प्रश्न अच्छी तरह नहीं फ्यता है और पृष्ठ देखकर अंक लगा देता है जिससे सटीक उत्तर लिखने वाले विद्यार्थियों को हानि होती है।

(x) निबन्धात्मक परीक्षा का दुष्प्रभाव विद्यार्थियों के स्वास्थ्य को हानि पहुँचाता है। बड़े–बड़े प्रश्नों को रटते–रटते कभी–कभी विद्यार्थी मानसिक संतुलन खो देते हैं। विद्यार्थियों के मन–मस्तिष्क पर आतंक छाया रहता है।

निबन्धात्मक परीक्षा की कमियों को दूर करने के उपाय–उपर्युक्त दोषों का अवलोकन करते हुए यह कहा जा सकता है कि भाषा के क्षेत्र में

निबन्धात्मक परीक्षा ही उपयोगी है। इसकी कमियों को दूर करने के लिए कुछ सुधार किये जा सकते हैं–

(i) प्रश्न पत्र में अत्यधिक विषय साम्रगी का समावेश किया जाए जिससे विद्यार्थी संपूर्ण पाठ्य सामग्री का अध्ययन करेंगे।

(ii) प्रश्नों को विश्लेषणात्मक रूप में व्यवस्थित करना चाहिए। सीधी सरल शैली में प्रश्न नहीं होने चाहिए। विश्लेषणात्मक स्वरूप होने से विद्यार्थी की भाषा शैली में सुधार होगा।

(iii) प्रश्न के स्वरूप के आधार पर अंक विभाजन होना चाहिए। निबन्धात्मक प्रश्नों की वैधता, विश्वसनीयता बनाने के लिए विस्तृत प्रश्न को भी विभाजित रूप में देना चाहिए, जैसे उपन्यास किसे कहते हैं? उपन्यास के विकास यात्रा पर प्रकाश डालें।

(iv) प्रश्नों के संभावित उत्तरों की सूची (उत्तर तालिका) देनी चाहिए जिससे उसी को आधार मानकर जाँच की जाए इस से परीक्षक की अपनी रुचि हॉवी नहीं होगी।

(v) उत्तर पुस्तिकाओं को परीक्षक के घर पर, विस्तृत न किया जाए। केन्द्र पर जाँच करवायी जाए।

(vi) विश्वविद्यालयों/कॉलेजों को जाँच कार्य के लिए उन्हीं अध्यापकों को बुलाना चाहिए जो रुचि रखते हों इससे अंकों पर दुष्प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(vii) प्रश्न पत्र के निर्देश स्पष्ट होने चाहिए। प्रश्न पत्र विद्यार्थियों के मानसिक स्तर के अनुýल होना चाहिए।

उपर्युक्त गुण दोषों को देखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भाषा की जाँच के लिए निबन्धात्मक परीक्षा उपयोगी है। भाषा के शुद्ध प्रयोग एवं प्रभावशाली पाठ्य रचना की जाँच निबन्धात्मक परीक्षा से ही संभव है। हाँ, परीक्षा को प्रश्न पत्र एवं जाँच प्रणाली नियमों में थोड़ा परिवर्तन करके उपयोगी बनाया जा सकता है।

(ख) लघु उत्तर परीक्षा– इस परीक्षा के अन्तर्गत प्रश्नों का उत्तर एक या दो पंक्तियों में लिखना होता है या कभी–कभी शब्दों की संख्या ;50 जव 200 ूवतकेद्ध निश्चित कर दी जाती है। इस परीक्षा में प्रश्नों की संख्या अधिक होती है। संपूर्ण पाठ्यक्रम का समावेश करने का प्रयत्न किया जाता है। विद्यार्थियों को विकल्प नहीं दिया जाता है। यदि देखा जाए तो इस परीक्षा में विद्यार्थियों के गहन ज्ञान की परख होती है। विद्यार्थियों को छोटे–छोटे उत्तर लिखने होते हैं जिससे उन्हें रटना नहीं पड़ता है। लघुत्तर परीक्षा में व्यक्तिनिष्ठता की संभावना नहीं होती है मूल्यांकन करने में भी परीक्षक उदासीनता नहीं दिखाता है क्योंकि प्रश्नों के निश्चित एवं संक्षिप्त होते हैं। इस परीक्षा में निम्न प्रकार के उत्तर प्रश्न पूछे जाते हैं।

(i) महादेवी वर्मा की किन्हीं दो कृतियों के नाम लिखें।

(ii) निबन्ध की परिभाषा लिखें।
(iii) कहानी में कौन–कौन से तत्व होते हैं?
(iv) 'निर्मला' के चरित्र की कोई दो विशेषतायें लिखें।
(v) सन्धि किसे कहते हैं?

लघु–उत्तर परीक्षा के दोष

(i) लघु उत्तर परीक्षा में प्रश्न संख्या अधिक होती है परीक्षक एवं परीक्षार्थी को मनोवैज्ञानिक रूप से प्रश्नों की संख्या का दबाव होता है। कभी–कभी परीक्षक को प्रश्न बनाने में कठिनाई आती है।
(ii) सामान्य औसत बुद्धि विद्यार्थियों के लिए लघुत्तर परीक्षा उपयोगी नहीं होती है क्योंकि सुव्यवस्थित सटीक उत्तर लिखने में कठिनाई आती है।
(iii) विद्यार्थियों की वाक्य रचना सम्बन्धी जाँच के लिए लघु उत्तर परीक्षा उपयोगी नहीं होती है।
(iv) विद्यार्थियों पर परीक्षा का दबाव अत्यधिक रहता है क्योंकि सूंपर्ण पाठ्यक्रम को तैयार करना जटिल कार्य होता है।
(v) अनुमान के आधार पर उत्तर नहीं दिया जा सकता है।
(vi) विद्यार्थियों को प्रश्नों को हल करने के लिए विकल्प नहीं दिया जाता है। इस दृष्टिकोण से सारा प्रश्न पत्र हल करना अनिवार्य हो जाता है।
(vii) लघु उत्तर परीक्षा में विद्यार्थियों की तार्किक योग्यता की जाँच नहीं होती है।
(viii) विद्यार्थियों को भाषा शैली ज्ञान को पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति करने की कोई स्वतन्त्रता नहीं होती है।

लघु उत्तर परीक्षा के दोषों का निवारण– लघु उत्तर परीक्षा की कमियों (दोषों) के निवारण हेतु निम्न उपाय किये जा सकते हैं–

(i) लघु उत्तर परीक्षा का कक्षा में अभ्यास करवाना चाहिए।
(ii) प्रत्येक पाठ को पढ़ाने के पश्चात् अध्यापक को पाठ के आधार पर परीक्षा लेनी चाहिए जिससे विद्यार्थी सटीक उत्तर देने में निपुण हो सकें।
(iii) विद्यार्थियों के मानसिक स्तर के आधार पर प्रश्न होने चाहिए जिससे वे आसानी से समझ सकें।
(iv) लघु उत्तर परीक्षा में कुछ प्रश्न कल्पनाशीलता पर आधारित होने चाहिए।
(v) आलोचनात्मक प्रश्नों का भी समावेश करना चाहिए।
(vi) लघुत्तर परीक्षा में भी विकल्प होना चाहिए जैसे 'आठ प्रश्नों में से कोई 6 प्रश्न कीजिए।'

इस प्रकार थोड़े से प्रयास से लघु उत्तर परीक्षा को अत्यधिक उपयोगी बनाया जा सकता है।

(ग) **वस्तुनिष्ठ परीक्षा–** वस्तुनिष्ठ परीक्षा में विद्यार्थी के गहन ज्ञान की परीक्षा की जाती है आजकल प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षाओं में इसी परीक्षा का साम्राज्य है। इसके अन्तर्गत विषय वस्तु के प्रत्येक भाग, उपभाग, शीर्षक, उपशीर्षक को समाहित किया जाता है। इस परीक्षा की विश्वसनीयता अत्यधिक होती है। इस परीक्षा में एक उत्तर रखने वाले प्रश्न ही बनाये जाते हैं जिससे मूल्यांकन में संदेह उत्पन्न नहीं होता है। कम से कम समय में अधिक प्रश्न पूछे जाते हैं। इस परीक्षा के अन्तर्गत कई प्रकार के प्रश्न होते हैं उन प्रश्नों का आदर्श प्रारूप इस प्रकार है–

(i) **रिक्त स्थान पूर्ति परीक्षा–** इस परीक्षा के अन्तर्गत वाक्य को लिखकर बीच–बीच में रिक्त स्थान छोड़ दिया जाता है। इस रिक्त स्थान की पूर्ति हेतु तीन या चार शब्दों को कोष्ठक में लिख दिया जाता है। विद्यार्थी अपने ज्ञान के आधार पर चयन करके सही शब्द लिख कर रिक्त स्थान की पूर्ति कर देते हैं, जैसे–

(i) रामचरित मानस की भाषा.....है। (अवधी, मैथिली, ब्रज भाषा)

(ii) रसों की संख्या.....है। (नौ, आठ, सात)

(ii) **वाक्य पूर्ति परीक्षा–** इस परीक्षा में विद्यार्थियों को अपनी स्मृति के आधार पर वाक्य पूर्ण करना होता है। विद्यार्थियों को कोई संकेतक सामग्री नहीं दी जाती है, जैसे–

(i) 'सूरसागर' के लेखक.....हैं।

(ii) 'भिक्षुक' कविता के लेखक है.....हैं।

(iii) क्रिया की विशेषता बताने वाले शब्दों को.....कहते हैं।

(iv) राष्ट्र भाषा का प्रावधान.....अनुच्छेद में है

(v) पंजाब में हिन्दी की स्थिति.....है।

(iii) **बहु विकल्प परीक्षा–** इस परीक्षा के अन्तर्गत एक प्रश्न के कई उत्तर (उपाय) लिख दिए जाते हैं जिनमें मात्र एक उत्तर सही होता है। विद्यार्थियों को सही उत्तर के आगे निशान लगाना होता है, जैसे–

(i) प्रेमचन्द ने कितने नाटक लिखे हैं– 1. एक, 2. तीन, 3. चार, 4. दो

(ii) 'सर्वनाम' के कितने भेद होते हैं– 1. छह, 2. सात, 3. पाँच, 4. आठ

(iv) **सत्य–असत्य परीक्षा–** इस परीक्षा के अन्तर्गत विद्यार्थियों के प्रश्न पत्र पर कुछ वाक्य या शब्द लिखे जाते हैं उनमें कुछ गलत होते हैं कुछ सही होते हैं विद्यार्थियों को अपनी सूझ के आधार पर सही पर □ का चिह्न और गलत पर ▯ का चिह्न अंकित करना होता है, जैसे–

(i) कामायनी के लेखक जयशंकर प्रसाद हैं। ▯

(ii) भक्ति काल को स्वर्ण युग भी कहा जाता है। ▯

(iii) जो शब्द 'संज्ञा' के स्थान पर प्रयुक्त होते है उन्हें विशेषण कहा जाता है। ▯

(v) **युगलीकरण परीक्षा–** इस परीक्षा में प्रश्नों को दो भागों में लिखा जाता है। एक भाग में प्रश्न होते हैं दूसरे भाग में उत्तर दिये जाते हैं परन्तु उत्तरों का क्रम सुव्यवस्थित नहीं होता है। विद्यार्थियों को प्रश्न और उत्तर पढ़कर सही क्रम निर्धारित करना होता है, जैसे–

(i)	पदमावत	सूदरास (7)
(ii)	कामायनी	जायसी (1)
(iii)	ग्राम्या	महादेवी वर्मा (5)
(iv)	मधुशाला	सुमित्रानंदन 'पंत' (3)
(v)	पथ के साथी	हरिवंशराय 'बच्चन' (4)
(vi)	सूरदास	मुन्शी प्रेमचन्द (6)
(vii)	सूरसागर	जयशंकर प्रसाद (2)

(vi) वाक्य व्यवस्थापन परीक्षा– इस परीक्षा के अन्तर्गत विद्यार्थियों के प्रश्न पत्र में वाक्य को लिखा जाता है। वाक्य में प्रयुक्त शब्दों का क्रम व्याकरण के आधार पर व्यवस्थित नहीं होता है। विद्यार्थियों को व्याकरण के आधार पर वाक्य को व्यवस्थित करना पड़ता है। इस परीक्षा के द्वारा विद्यार्थियों के व्याकरण ज्ञान की जाँच की जाती है। इसके अन्तर्गत निम्न प्रकार के प्रश्न होते हैं, जैसे–

(i) बाजार मुझको है जाना।
(ii) साहित्य है दर्पण समाज का।
(iii) पढ़ाता है पाठ अध्यापक।

वस्तुनिष्ठ परीक्षा के गुण

आजकल कभी परीक्षाओं में वस्तु–निष्ठ प्रश्नों को सम्मिलित करने की प्रवृत्ति अपनाई जा रही है। सम्भवते इस का कारण इसके निम्नलिखित गुण है–

(i) वस्तुनिष्ठ परीक्षा निबन्धात्मक परीक्षा के समान कुछ गिने–चुने प्रश्नों पर आधारित नहीं होती बल्कि इस में ज्यादा से ज्यादा पाठ्य सामग्री को सम्मिलित किया जाता है। परिणाम स्वरूप विद्यार्थी कुछ गिने–चुने प्रश्न तैयार नहीं करते बल्कि सम्पूर्ण पाठ्य सामग्री तैयार करते हैं।

(ii) वस्तुनिष्ठ–परीक्षा विद्यार्थियों के ज्ञान, बोध–क्षमता तथा स्मरण–शक्ति की जांच करती है। इस में लेखन–कला की बाधा नहीं होती। लेखन कला में प्रवीण न होने वाले विद्यार्थी भी इस में अधिक अंक प्राप्त कर सकते हैं।

(iii) यह परीक्षा शिक्षा के विभिन्न पहलुओं की जांच करने में समर्थ है। भाषा शिक्षा में विद्यार्थियों को कई प्रकार के तथ्यों का ज्ञान प्राप्त करना होता है, व्याकरण के कई नियमों का व्यवहारिक रूप जानना होता है। शब्दों के अर्थ और प्रयोग समझने होते हैं; शुद्ध अक्षर विन्यास की योग्यता प्राप्त करनी होती है। वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं द्वारा इन सभी कौशलों की जांच की जा सकती है।

(iv) यह परीक्षा विद्यार्थियों की रटन्त–प्रवृत्ति पर प्रतिबन्ध लगाती है। इस की तैयारी के लिए विद्यार्थियों को लम्बे–लम्बे प्रश्नोत्तर रटने की आवश्यकता नहीं होती है।

(v) वस्तुनिष्ठ परीक्षा निबन्धात्मक परीक्षा की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय है। इस में भाग्य और संयोग का बहुत कम हाथ रहता है। इसका अंकन भी विश्वसनीय होता है।

(vi) इस का अंकन निबन्धात्मक परीक्षा के अंकन की तरह कष्टसाध्य नहीं। इस में शिक्षक को लम्बे–लम्बे उत्तर नहीं फ्यने फ्यते। प्रत्येक प्रश्न के सामने 'एक शब्द' में या सही अथवा 'क्रास' मे उत्तर दिया होता है जिस का अंकन परीक्षक के लिए बहुत आसान हैं।

(vii) इस के अंकन में व्यक्तिपरकता की कोई गुंजाइश नहीं होती प्रत्येक प्रश्न का उत्तर निश्चित होता है और उसी के अनुसार परीक्षक को उस का माप करना होता है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षा की सीमाएं

इस में कोई सन्देह नहीं कि वस्तु–निष्ठ परीक्षा अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय एवं प्रमाणिक होती है। परन्तु इस की कुछ सीमायें हैं, जैसें –

(i) इस से विद्यार्थियों की तर्क–शक्ति के विकास में सहायता नहीं मिलती। इन से इस बात की जांच तो हो जाती है कि विद्यार्थी ने कितना ज्ञान प्राप्त किया है परन्तु इस बात की जांच नहीं हो सकती कि वह अपने ज्ञान को तर्क–शक्ति से सिद्ध भी कर सकता है या नहीं।

(ii) वस्तुनिष्ठ परीक्षा विद्यार्थियों की अभिव्यक्ति–योग्यता के विकास में सहायक नहीं होती, बल्कि बाधक होती है। अभिव्यक्ति–योग्यता प्राप्त करने के लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है। परन्तु यदि विद्यार्थी को ज्ञात हो कि उस की परीक्षा अभिव्यक्ति योग्यता की प्राप्ति के बिना कम से कम भाषा–शिक्षा अधूरी है। अतः भाषा–शिक्षा में केवल वस्तुनिष्ठ परीक्षा पर निर्भर नहीं रहा जा सकता।

(iii) वस्तुनिष्ठ परीक्षा विचारों के संगठन, विश्लेषण तथा निष्कर्ष निरूपण की प्रेरणा प्रदान नहीं करती **इस दोष के निराकरण के लिए शिक्षा शास्त्रियों ने गलत उत्तर के लिए अंक काटने का सुझाव दिया है।**

(iv) **वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का उत्तर देने में अधिकांश विद्यार्थी अनुमान का प्रयोग करते हैं।**

(v) वस्तुनिष्ठ परीक्षा में नकल की बहुत सम्भावना रहती है। कई बार तो नकल पर नियन्त्रण करना असम्भव हो जाता है। किसी भी विद्यार्थी के मुँह से निकला 'हां' या 'नहीं' सभी विद्यार्थियों को ठीक उत्तर की सूचना दे देता है।

(vi) वस्तुनिष्ठ परीक्षा से विद्यार्थियों को विस्तृत अध्ययन करने तथा स्वतन्त्र चिन्तन की प्रेरणा नहीं मिलती। विद्यार्थी जानते हैं कि वस्तुनिष्ठ प्रश्न उन की पाठ्य–पुस्तकों पर आधारित होते हैं जिन का उत्तर उन्हें 'हां' या 'नहीं' में देना है।

इसलिए वह अतिरिक्त पुस्तकें पढ़ने की आवश्यकता अनुभव नहीं करते हैं। इस प्रकार वस्तुनिष्ठ परीक्षा स्वतन्त्र–अध्ययन के लिए घातक सिद्ध होती है।

(vii) वस्तुनिष्ठ परीक्षा में सही और गलत कथनों को आपस में मिला दिया जाता है। छोटे बच्चे गलत कथन को भी स्वीकार कर लेते हैं और ऐसे कथनों की छाप उन के मन पर अंकित हो जाती है। इस दृष्टिकोण से वह परीक्षा मनोवैज्ञानिक रूप से भी त्रुटिपूर्ण है।

(viii) वस्तुनिष्ठ परीक्षा निदानात्मक नहीं होती। इस से यह विदित नहीं होता कि विद्यार्थियों की तर्क–शक्ति कहां पर रुक जाती है और कहां से, उन का अनुमान–कार्य आरम्भ होता है।

(ix) वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का निर्माण बहुत कठिन है। प्रश्न–पत्र निर्माताओं को विभिन्न प्रकार के कई प्रश्नों का निर्माण करना होता है। इस के लिए समय, शक्ति, धैर्य, योग्यता, प्रशिक्षण तथा व्यापक ज्ञान की आवश्यकता होती है।

(x) निबन्धात्मक परीक्षा के समान वस्तुनिष्ठ परीक्षा भी पाठ्य–पुस्तकों के गम्भीर अध्ययन के लिए बाधक सिद्ध होती है और सस्ते नोट्स तथा गाईडों को पढ़ने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करते हैं। गाईडों में दिए गए इन प्रश्नों तथा उत्तरों को वे रट लेते हैं और परीक्षा देने चले जाते है।

इन दोषों के होते हुए भी वस्तुनिष्ठ–परीक्षा की उपयोगिता की अपेक्षा नहीं की जा सकती। आवश्यकता इस बात की है कि इस के दोषों को दूर किया जाये। ज्यादा संख्या में वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का निर्माण करके प्रश्न–पत्र निर्माताओं को उचित प्रशिक्षण प्रदान करके तथा गलत उत्तर देने वाले परीक्षार्थी के अंक काट कर इस के दोषों को कुछ कम किया जा सकता है।

2.4.8 अच्छे मूल्यांकन की विशेषताएँ

1. **उच्चारण कौशल की परीक्षा–** शुद्ध उच्चारण मौखिक अभिव्यक्ति का आवश्यक अंग है। भाषा–शिक्षा में 'शुद्ध उच्चारण' के शिक्षण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। शुद्ध उच्चारण की परीक्षा न होने के कारण विद्यार्थियों में अशुद्ध–उच्चारण की आदत पड़ जाती है जो उन की भावाभिव्यक्ति में तो बाधक बनती है, साथ में उन्हें कई बार हास्यास्पद भी बना देती है। अतः विद्यार्थियों के हिन्दी उच्चारण की परीक्षा अवश्य होनी चाहिए। उच्चारण के परीक्षण के लिए 'मौखिक परीक्षा' ही अतिउत्तम साधन है।

2. **वाचन–कौशल का परीक्षण–** भाषा–शिक्षा में विद्यार्थियों को उचित गति के साथ शुद्धवाचन का शिक्षण दिया जाता है। वाचन की शिक्षा में शब्दोच्चारण, अक्षर–व्यक्ति (Articulation)] बल (Emphasis), विराम (Pause) भावों के अनुसार ध्वनियों के उतार–चढ़ाव, प्रवाह, गति आदि की ओर ध्यान दिया जाता है। विद्यार्थियों ने वाचन–कौशल में कहां तक योग्यता प्राप्त की है, इसकी जांच करने के लिए उन के वाचन–कौशल की परीक्षा होनी चाहिए।

वाचन कौशल के परीक्षण के लिए 'मौखिक परीक्षा' ही उपयोगी है। विद्यार्थियों को अनुच्छेद पढ़ने के लिए देना चाहिए। पढ़ने में उनकी अशुद्धियों, बल, विराम, ध्वनियों के उतार–चढ़ाव, प्रवाह, गति आदि को देख कर उनकी वाचन–कौशल का मूल्यांकन करना चाहिए।

3. बोध–क्षमता का परीक्षण– भाषा–शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों को मौखिक भाषा तथा लिपिबद्ध भाषा को समझने की योग्यता प्रदान की जाती है। बोध–क्षमता के परीक्षण के लिए 'मौखिक परीक्षा' 'वस्तुनिष्ठ परीक्षा' की व्यवस्था होनी चाहिए। मौखिक परीक्षा के लिए विद्यार्थियों को एक अनुच्छेद पचने के लिए देना चाहिए और फिर उसी अनुच्छेद पर आधारित प्रश्न पूछने चाहिएं।

4. शब्दावली–ज्ञान की परीक्षा–भाषा–शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों के शब्द–ज्ञान में वृद्धि की जाती है। उन्हें शब्दों के विभिन्न रूपों तथा प्रयोगों का ज्ञान कराया जाता है। उनके शब्दावली–ज्ञान का परीक्षण अवश्य होना चाहिए। शब्दावली ज्ञान के लिए भी 'मौखिक परीक्षा' तथा 'वस्तुनिष्ठ परीक्षा का प्रयोग किया जा सकता है।

5. रचना कौशल का परीक्षण– भाषा–शिक्षा में रचना–कौशल शिक्षण का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। विद्यार्थियों को शुद्ध व्याकरण सम्मत तथा प्रभावोत्पादक भाषा में रचना–कार्य करने की योग्यता प्रदान करना भाषा–शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है।

रचना–कौशल के परीक्षण के लिए 'निबन्धात्मक परीक्षा' ही विशेष उपयोगी है। निबन्धात्मक प्रश्नों द्वारा विद्यार्थियों से पाठ्य–पुस्तक के किसी पाठ (कहानी, निबन्ध आदि) का सार एवं उद्देश्य पूछा जा सकता है; किसी पात्र का चरित्र–चित्रण करने को कहा जा सकता है, कहानी, निबन्ध तथा पत्र के द्वारा भी उन के रचना–कौशल का परीक्षण किया जा सकता है।

6. सुलेख की परीक्षा– छोटी कक्षाओं से ही विद्यार्थियों को सुन्दर लिखने का प्रशिक्षण दिया जाता है। उन में सुन्दर लिखने की प्रवृत्ति एवं रुचि को प्रेरित करने के लिए उन के सुलेख का भी परीक्षण होना चाहिए।

छोटी कक्षाओं में सुलेख की परीक्षा के लिए विद्यार्थियों को श्रुतलेख लिखवाया जा सकता है। इस से उन के सुलेख एवं अक्षर–विन्यास के लिए अलग–अलग अंक निर्धारित होने चाहिए। श्रुतलेख के अतिरिक्त विद्यार्थियों से अनुलिपि तथा प्रतिलिपि भी करवायी जा सकती है।

7. पाठ्य–सामग्री के ज्ञान का परीक्षण– प्रत्येक कक्षा में भाषा–शिक्षा के लिए पाठ्य–पुस्तकें निर्धारित होती है। वस्तुते पाठ्य–पुस्तक भाषा–शिक्षण का महत्त्वपूर्ण साधन है। इस के माध्यम से विद्यार्थी विभिन्न विषयों तथा तथ्यों को समझते और याद रखते हैं। इसी के आधार पर ही वे परीक्षा की तैयारी करते हैं। अतः पाठ्य–सामग्री में प्रशिक्षण भाषा–परीक्षण का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग हैं।

पाठ्य–सामग्री के ज्ञान की परीक्षा के लिए 'निबन्धात्मक परीक्षा' 'वस्तुनिष्ठ परीक्षा' तथा 'लघुत्तर परीक्षा' का प्रयोग किया जाना चाहिए।

8. सौन्दर्य–बोध की परीक्षा– भाषा–शिक्षा में कविता–शिक्षण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक कक्षा के लिए निर्धारित भाषा की पाठ्य–पुस्तक में कुछ कविताएं भी संकलित होती हैं। कविता–शिक्षण का सामान्य उद्देश्य विद्यार्थियों की रागात्मक प्रवृत्तियों का संशोधन करके उन में सौन्दर्यानुभूति को विकसित करना है। इस के अतिरिक्त संकलित कविताओं के विशेष भावों, विचारों तथा शैली का ज्ञान प्रदान करना भी कविता–शिक्षण का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है।

9. व्याकरण के ज्ञान की परीक्षा– व्याकरण का प्रशिक्षण भाषा–शिक्षा का अत्यन्त आवश्यक अंग है। इस के द्वारा विद्यार्थियों को भाषा के शुद्ध रूप को पहचानने तथा प्रयोग करने की योग्यता प्रदान की जाती है। व्याकरण की शिक्षा से ही वे वाक्यों में शब्दों के स्थान, कार्य तथा उन के पारस्परिक सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त करते हैं। जब विद्यार्थियों को व्याकरण का ज्ञान दिया जाता है तो उनके व्याकरण–ज्ञान का परीक्षण भी होना चाहिए।

व्याकरण–ज्ञान का परीक्षण करने के लिए 'वस्तुगत परीक्षा' बहुत उपयोगी है। वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का निर्माण कर विद्यार्थियों से व्याकरण की पारिभाषिक शब्दावली के लक्षण उदाहरण पूछे जा सकते हैं। अक्षर–विन्यास तथा प्रयोगात्मक व्याकरण पर भी वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का निर्माण किया जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी की परीक्षा व्यवस्था किसी प्रकार की परीक्षा पर आधारित नहीं की जा सकती। इसकी उपयोगी व्यवस्था के लिए निबन्धात्मक वस्तुनिष्ठ, मौखिक, लघुत्तर परीक्षाओं तथा दैनिक–कार्य का समिश्रण होना चाहिए। यह पहले कहा जा चुका है कि दैनिक–कार्य के द्वारा भी विद्यार्थियों की विभिन्न योग्यताओं की जांच होती रहती है।

2.4.9 आदर्श प्रश्न पत्र निर्माण के सिद्धान्त

परीक्षा व्यवस्था में प्रश्न पत्र अनिवार्य है। इसके बिना परीक्षा संभव नहीं हो सकती। प्रश्न पत्र निर्माण में अध्यापक को निम्नलिखित सिद्धान्तों का अनुकरण करना चाहिए।

(i) उद्देश्यों का ज्ञान– प्रश्न पत्र बनाते समय अध्यापक को उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए अंक विभाजन करना चाहिए। हिन्दी का प्रश्न पत्र बनाते समय पाठ्य सामग्री, व्याकरण, रचना (बोध, अभिव्यक्ति, सौदंर्य) आदि के मूल्यांकन का उद्देश्य सामने रखकर अंक विभाजन करना चाहिए।

(ii) विषय वस्तु वर्गीकरण– हिन्दी शिक्षण में विभिन्न प्रकार की विषय वस्तु निर्धारित की जाती है– पाठ्य पुस्तक, शब्दार्थ, व्याकरण, वर्तनी, रचना, कविता इत्यादि। प्रत्येक भाग का अंश एवं उसके लिए निर्धारित अंक पहले ही तय कर लेना चाहिए, जैसे–पाठ्य पुस्तक (15), कविता (10), व्याकरण (25) आदि।

(iii) विभिन्न प्रकार के प्रश्नों के लिए निर्धारित अंक– विभिन्न प्रकार के प्रश्न जैसे– निबन्धात्मक, संक्षिप्त उत्तर, वस्तुनिष्ठ आदि। प्रश्नों की प्रकृति के आधार पर अंक विभाजित कर लेने चाहिए।

(iv) प्रश्न पत्र की रूपरेखा तैयार करना– हिन्दी शिक्षण के उद्देश्यों, विषय वस्तु का विस्तार, प्रश्नों की विभिन्नता एवं अंक निर्धारित करने के पश्चात् प्रश्न पत्र की रूप रेखा तैयार कर लेनी चाहिए। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के प्रश्नों की संख्या एवं उनके अंकों इत्यादि का स्पष्टीकरण होता है।

(v) प्रश्न बनाना– रूप रेखा के पश्चात् परीक्षक के समक्ष स्पष्ट भूमिका होती है जिसके आधार पर वह निश्चित कर लेता है कितने निबन्धात्मक प्रश्न होंगे, कितने संक्षिप्त उत्तर से संबन्धित प्रश्न और कितने वस्तुनिष्ठ प्रश्न होने चाहिए। सभी प्रश्नों का उद्देश्य भाषा के उद्देश्यों को प्राप्त करना होता है।

(vi) परीक्षार्थियों के लिए स्पष्ट निर्देश– प्रत्येक खण्ड में प्रश्नों से सम्बन्धित आवश्यक निर्देश होने चाहिए। निर्देश सरल और स्पष्ट भाषा में होने चाहिए। प्रत्येक प्रश्न के समक्ष अंक अवश्य लिखने चाहिए। अंक लिखे होने पर विद्यार्थी उत्तर का विस्तार अंकों के आधार पर देते हैं।

(vii) उत्तर तालिका बनाना– प्रश्न पत्र निर्माण के पश्चात् परीक्षक को उत्तर तालिका अवश्य बनानी चाहिए। उत्तरों का स्पष्ट उल्लेख होने से उत्तर पुस्तिका की जाँच करने में मदद मिलती है। किसी भी प्रकार की अनिश्चितता (असमंजस) की स्थिति नहीं होती है। उत्तर पुस्तिका के साथ ही उत्तर तालिका परीक्षकों को दे देनी चाहिए। परीक्षक एवं विषय अध्यापकों का आपस में तारतम्य होना चाहिए जिससे परीक्षक एवं विषय अध्यापक अच्छा मूल्यांकन कर सकेंगे।

(viii) प्रामाणिकता– प्रश्न पत्र प्रामाणिक होने चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि भाषा शिक्षण में मौलिक अभिव्यक्ति की जाँच करना चाहते हैं तो परीक्षक का ध्यान मौलिक अभिव्यक्ति पर होना चाहिए न कि भाषा सुलेख, वर्तनी आदि पर।

(ix) मौलिकता– प्रश्नों का निर्माण इस प्रकार से करना चाहिए जो रटने की अपेक्षा विद्यार्थियों को मौलिक चिन्तन को अभिप्रेरित करें जिससे विद्यार्थियों के व्यावहारिक ज्ञान का परिचय मिले।

(x) वैयक्तिक भिन्नता– सरल तथा कठिन दोनों ही प्रकार के प्रश्न होने चाहिएं जिन्हें हर मानसिक स्तर का विद्यार्थी कर सके।

(xi) भाषाशैली– प्रश्नों की भाषा सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिए जिसे विद्यार्थी आसानी से समझकर उत्तर दे सकें। प्रश्न पूछने में प्रचलित शब्दावली का प्रयोग करना चाहिए।

(xii) विकल्प– उत्तरों के विकल्प न अत्यधिक हों न बहुत कम। विद्यार्थी समूचे पाठ्यक्रम का अध्ययन कर सकें, इसके लिए प्रश्न पत्र के विकल्प एक ही विषय अथवा योग्यता पर दिए जाने चाहिएं।

(xiii) प्रश्न संख्या– विद्यार्थियों के स्तरानुसार प्रश्नों की संख्या निर्धारित की जानी चाहिए। निबन्धात्मक, लघु उत्तर व वस्तुनिष्ठ प्रश्नों की संख्या सानुपातिक होनी चाहिए। प्रश्नों की संख्या समय निर्धारण पर भी निर्भर करती है।

(xiv) समय निर्धारण– विद्यार्थियों का कक्षा के स्तर को ध्यान में रख कर परीक्षा का समय निर्धारित करना चाहिए तथा उसके अनुरूप प्रश्न पत्र का निर्माण करना चाहिए। प्राथमिक स्तर पर समय डेट से दो घण्टे तथा माध्यमिक स्तर पर तीन घण्टे तक का समय उपर्युक्त है।

(xv) विश्लेषण– अध्यापक प्रश्न पत्र बनाते हुए विश्लेषण का सकता है कि पाठ्यपुस्तक के सि पाठ से सम्बन्धित है? कैसा प्रश्न है ? तथा भाषा शिक्षण के किस उद्देश्य की पूर्ति करता है। विश्लेषण करने से समूचे पाठ्यक्रम का अवलोकन हो जाता है तथा कोई भी अध्याय अछूता नहीं रहता।

(xvi) जाँच– प्रश्न पत्र बनाने के उपरान्त इसकी जाँच आवश्यक है कि प्रश्न पत्र की भाषा एवं वाक्य योजना ठीक है? भाषा विषयानुकूल है? प्रश्न अपने आप में पूर्ण है?

विद्यार्थियों के लिए निर्देश व अंक आदि ठीक हैं? इन सबकी जाँच आवश्यक है। छपाई के बाद भी प्रश्न पत्र की जाँच जरूरी है कि कहीं कोई छपाई में अशुद्धि तो नहीं है।

2.4.10 सारांश

इस अध्याय में हमने मूल्यांकन, मूल्यांकन के उद्देश्य, महत्व, सोपान और विधियों के बारे में चर्चा की। मूल्यांकन एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे विद्यार्थी की प्राप्तियों का पता लगाया जा सकता है। अध्यापक मूल्यांकन विभिन्न तरीकों से कर सकता है। सतत् मूल्यांकन एक बहुत अच्छी प्रक्रिया है।

2.4.11 स्वयं जांच अभ्यास

खाली स्थान भरो

1. .....के अन्तर्गत विद्यार्थियों से मौखिक रूप से प्रश्न पूछकर मौखिक रूप से उत्तर सुन लिए जाते हैं।
2. .....परीक्षा में विद्यार्थी के गहन ज्ञान की परीक्षा की जाती है।

उत्तर : 1. मौखिक परीक्षा 2. वस्तुनिष्ठ

2.4.12 अभ्यासात्मक प्रश्न

प्रश्न1. मूल्यांकन से क्या अभिप्राय है? अर्थ स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न2. भाषा के विभिन्न कौशलों का मूल्यांकन किस प्रकार किया जा सकता है?

प्रश्न3. भाषा के शिक्षण में मूल्यांकन के कौन–कौन से साधन हैं?

प्रश्न4. भाषा शिक्षण में मूल्यांकन का महत्त्व व आवश्यकता स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न5. मूल्यांकन के लिए परीक्षा सबसे अधिक प्रचलित विधि है। इसके स्वरूप को समझाते हुए मूल्यांकन के विविध प्रकारों का उल्लेख कीजिए।

प्रश्न6. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखें

(i) लघुत्तर परीक्षा
(ii) वस्तुनिष्ठ परीक्षा के दोष
(iii) प्रश्न पत्र निर्माण के सिद्धान्त
(iv) निबन्धात्मक परीक्षा के गुण

2.4.13 सहायक पुस्तकें

1. आधुनिक हिन्दी शिक्षण– डॉ. योगेश कूमार– ए. पी. एच. पब्लिशिंग, कॉरपोरेशन, नई दिल्ली
2. नूतन हिन्दी शिक्षण– डॉ. के. आय. सत्तिगेरी– विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
3. हिन्दी भाषा शिक्षण– डॉ. आशा कश्यप– टवेंटी फस्ट सेंचुरी पब्लिकेशन्ज, पटियाला
4. हिन्दी शिक्षण– डॉ. बी. एल. वत्स–विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
5. हिन्दी शिक्षण– ज्योति खन्ना – धनपत राय एण्ड कं., दिल्ली

Mandatory Student Feedback Form

https://forms.gle/KS5CLhvpwrpgjwN98

Note: Students, kindly click this google form link, and fill this feedback form once.